ओंकार आदर्श चरित माला की आठवीं पुस्तक

गुरु गोविन्दसिंह

आर्य्य जाति के सच्चे उद्धारक तथा संरक्षक

लेखक

श्रीयुत राधामोहन गोकुलजी भूतपूर्व सम्पादक
सत्य सनातनधर्म तथा सहायक
सम्पादक विज्ञान।
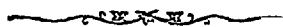
सम्पादक तथा प्रकाशक

पं० ओङ्कारनाथ वाजपेयी

प्रयाग

सन् १९१९

प्रथमवार २१००] मूल्य ।-)

प्रस्तावना

आजतक श्री गुरुगोविन्द महाराज के हिन्दी में जितने जीवनचरित्र सर्वसाधारण के सामने आये हैं उनमें से कोई भी ऐसा नही जिससे सिक्खों की दसवी वादशाही का आन्तरिक वाह्य रूप विशुद्ध सच्चे ऐतिहासिक रंग से रंगा हुआ प्रत्यक्ष होता हो। यही कारण है कि मैंने थोडे शब्दों में इस महानुभाव प्रसिद्ध राष्ट्र निर्माता गुरु गोविन्द को इस प्रकार से चित्रित करने की चेष्टा की है कि जिसे देखकर प्रत्येक भारत सन्तान अपने हृदय पटल पर अंकित करके आजन्म देखता रह सके और भूल भ्रान्ति का यत्किञ्चित भी भय न हो।

लेकिन जव तक हम यह न जान लें कि सिक्ख धर्म क्या है, कैसे इसका प्रादुर्भाव हुआ, कव यह एक सम्प्रदाय वना, फिर कैसे यह राजनैतिक शक्ति में वदल गई; हमारे चरित्र-नायक के रंग भूमि पर उतरने के पहिले सिक्खों को कैसे हेर फेर देखने पड़े, किन किन अत्याचारों व कठिनाइयों को झेलना पडा, गुरु गोविन्द के सच्चे रूप का ज्ञान होना कठिन है विना पूर्वापर के ज्ञान व विचार के अनेकधा हम व्यक्तियों के भले काम को वुरा व वुरे को भला समझ वैठते हैं। इसी दोष को मिटाने के लिये, विषय का यथावत ज्ञान होने के लिये और ऐतिहासिक शृङ्खला स्थिर रखने के लिये हमें इस भूमिका में धर्मधुरीण, कर्मवीर पुरुपार्थी सुधारक गुरुनानक के समय से गुरु तेग़ वहादुर के समय तक का सूक्ष्म वृतान्त देना अनिवार्य्य प्रतीत होता है।

प्रथम गुरुनानक

किसी ने सच कहा है :—

धन मद बलमद राजमद विद्यामद तें हद्द।
ये चारों पामाल हैं जब उठे राग अनहद्द॥

धर्म्म बल के आगे सब बल तुच्छ हैं, धर्म्म का बल भी संसार में ऐसा बल है जिसकी समता करनेवाला दूसरा बल नहीं। इसी परम बल के बली वीर गुरुनानक देव विक्रम सम्वत् १५२६ में तलवण्डी नगर में (ज़िला जालन्धर) कालू राम खत्री के पुत्र होकर भूमिष्ठ हुए। आपने ७० वर्ष की अवस्था पायी और यावज्जीवन देश सेवा करते हुए सम्वत् १५६५ वि० में परमपदारूढ़ हुए।

इनके समय में आर्य्य लोग पूर्ण रूप से हिन्दू बन चुके थे। हिन्दू धर्म की जो दुर्दशा आज हम देख रहे हैं इससे सौगुनी अधिक थी। धर्म, धर्म्म ग्रन्थ और सर्वेश्वर परमात्मा को मानो पुरोहिती कैतव ने खरीद लिया था। इस देश की दुर्दशा को देख कर उस नानक देव का हृदय पिघल गया। धन लेकर वैकुण्ठ का पट्टा देना, धन के बदले मनुष्य के मारने व जिलाने का पुरोहिती दावा इनसे न देखा गया। यह यद्यपि बड़े भारी विद्वान न थे तथापि इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी, इनका आत्मिक बल इतना बढा था, इनमें ईश्वर प्रदत्त शक्ति इतनी थी, कि यह चाहते तो अपनी एक नयी सम्प्रदाय खड़ी कर लेते, पर नहीं इन्होंने हिन्दू धर्म के

सुधार का बीड़ा उठाया।

इन्होंने जहां हिन्दूओं को पुरोहिती कैतव से छुडाने का घोर परिश्रम व प्रयत्न किया, और इनके नैतिक व सामाजिक सुधार की चेष्टा की वहां इन्होंने मुसलमानी अत्याचारों के विरुद्ध भी प्रबल आवाज़ उठाई। प्राणी मात्र में समदर्शी होना, एक परमपिता परमात्मा की भक्ति, ब्राह्मणों व मुल्लाओं के छल से देश को छुडाना, सत्य का ही अनुकरण करना इनकी शिक्षा का मर्म्म था। सहस्रों वर्ष के एकत्रित, राज व पुरोहिती धन के पिसे हिन्दुओं का पक्ष लेकर इन्होंने काम करना आरम्भ किया।

आप कपड़ा रंगकर त्यागी बन एकान्त बैठने के घोर विरोधी थे आपकी शिक्षा गीता के दो शब्दों के अनुसार थी, वह यह है:—

> ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सगत्यक्त्वा करोति|य ।
> लिप्यते न स पापेन पद्म पत्रमिवाम्भसा ॥
> कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
> योगिन. कर्म कुर्वन्ति सगत्यक्त्वात्मशुद्धये।

इसी से यह सब मिलकर काम करते रहे और औरों को भी गृहस्थ होकर योगी, सच्चा योगी बनना सिखाया।

यद्यपि मुसलमानों की अत्याचार भरी खड्ग हिन्दुओं के सिर पर लटक रही थी, मुसलमानों ने आर्य धर्म को रसातल भेजना, आर्यवंश को निर्बीज करना ठान रक्खा था, गुरूनानक ने निर्भय होकर हिन्दूधर्म व जाति के उद्धारक व सुधारक का काम किया, धार्मिक व राजनैतिक उद्धार की बुनियाद डाली और नया राष्ट्र स्थापित किया। मुसलमानी धर्म के भीतर

दूसरी हिन्दुस्थानी तलवार उत्पन्न करदी। इसी काम के लिये गुरुनानक का नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा। इन सब बातोंके होते भी इनकी शिक्षा शान्तिमय, धर्म प्रधान और संसार भर के लिये कल्याण कारिणी रही।

परन्तु बहुत दिनों का अधःपतित हिन्दू समाजका उद्धार व सुधार इतना सरल न था कि नानकदेव के ही जीवनमें पूरा हो जाता, इसलिये इन्हें अपने काम की बड़ी चिन्ता थी, यह चाहते थे कि मेरे पीछे भी यह पवित्र काम यथावत् चलता रहे। परमात्मा की कृपा से इन्हें एक सुयोग्य शिष्य लेहना नामक एक खत्री मिला,इसीको इन्होंने अपनी गद्दी सौंपी। यद्यपि गुरुनानक के पुत्र श्रीचन्द मौजूद थे पर इन्होंने उसे गद्दी नहीं दी। श्रीचन्द ने उदासी संन्यासी का पन्थ चलाया और बड़े त्यागी हुये। परन्तु इनका मार्ग गुरुसाहब की शिक्षा व इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल था।

दूसरे गुरु अंगद

गुरू नानक के स्वर्गारोहण के पीछे लेहना गुरू अंगद के नाम से गद्दी पर बैठा। गुरू अंगद की बुद्धि बड़ी तीव्र व संगठन के काममें दक्ष थी, इन्होंने सिक्ख समुदाय को दृढ़ करने के अनेक उपाय किये जिनमें (१) गुरुमुखी अक्षरोंका आविष्कार (२) आदि ग्रन्थ,गुरुनानक के जीवनचरित्र का लिपि बद्ध करना (३) लंगर (भोजन गृह जहांसे बिना मूल्य भोजन मिलता हो) स्थापित करना था। इन कामों से संस्कृत के अभिमानी, धर्म के छिपाने, तथा बेचनेवाले पुरोहितों का बलटूटा गुरुनानक की शिक्षा के प्रति सिक्ख समुदाय की भक्ति बढ़ी और लंगर से

सिक्खों में सच्चा भायप उत्पन्न होकर प्रेम बढ़ा व पीछे दिनों दिन फूलता फलता चला गया। इनकी सारी शिक्षा शान्ति प्रदायिनी, व इनकी दीक्षा प्रेम व एकता बढ़ानेवाली थी।

तीसरे गुरु अमरदास

सम्वत् १६१२ में गुरु अंगद के स्वर्गवास होने पर तीसरे गुरु अमरदास गद्दी पर बैठे। इन्होंने गुरु अंगद की ही लकीर पर चलकर सिक्ख समुदाय को दृढ़तर बनाया। इन्होंने सारे सिक्ख समुदाय को २२ मंजों (गद्दियों) में विभक्त करके प्रत्येक पर अपना प्रतिनिधि नियत किया। इनके समय में सिक्खों का खूब बल बढ़ा।

चौथे गुरु रामदास

इनके पश्चात् अमृतसर तडाग के निर्म्माता चौथे गुरु राम दास गद्दी आरूढ़ हुये। अकबरकी मैत्री और अनुग्रहके कारण इनको बालक सिक्ख समुदाय के बनाने में बड़ी सुविधा व सहायता हुई। सिक्खों की जड़ इन्हीं के समय पक्की हुई थी। धन व जन दोनों से यह समुदाय परिपूर्ण होगई। इन्होंने बाद-शाह का अनुग्रह स्वयम् नहीं ढूंढा, किन्तु बादशाह ने आपही आकर इनके चरण पूजे व थोड़ीसी धरती भी दी। इन्होंने एक वार हरिद्वार के यात्रियों का कर जो १।) प्रति जन था छुड़ा दिया।

अब तक गद्दी योग्य शिष्यों को मिलती थी परन्तु इनके समय से पैत्रिक सम्पत्ति होगई, क्योंकि यह अपनी पुत्री व

दामाद की सेवा से प्रसन्न हो, पुत्री के घराने में गद्दी रखने का वचन हार चुके थे।

पांचवें गुरु अर्जुनदेव जी

गुरु रामदास के वैकुण्ठवासी होने पर १६३८ विक्रमीय में इनके दोहते गुरु अर्जुनदेवजी सिंहासनारूढ़ हुए १६६४ तक आप गद्दी पर रहे। इनके समय में सिक्ख सम्प्रदाय बनगई, सिक्ख धर्म्म ने पृथक रूप धारण किया। यह कवि, व्यावहारिक दार्शनिक और बलवान राजनीतिज्ञ थे। यह अपने काम में पिछले गुरुओं से बहुत ही आगे बढ़ गये। इनमें राष्ट्र निर्माण की विलक्षण शक्ति थी। इन्हीं के समय से मुग़लों का अत्याचार सिक्खों के पीछे पड़ा। किन्तु इस प्रकार के अत्याचार ही अत्याचारी के विनाश और प्रजा के विकाश के हेतु हुआ करते हैं। बलियों के रुधिर केही गारे से दृढ़ धर्म्म भवन की नींव संसार में पडी है व पड़ती है। जब तक मनुष्य में उच्च अभिलाषाएं, और महोद्यमशील अन्तरात्मा व दृढ़ आत्मा न हो तबतक राजनैतिक समुन्नति दुस्तर है। मनुष्य में राजनैतिकउद्धार के लिये कर्मवीर होनेकी इच्छा और आत्मिकबल की अनिवार्य ज़रूरत है। गुरु अर्जुनदेव में यह सब बातें थीं।

गुरु अर्जुन केसमय में मुहम्मदी अन्याय से प्रजाका कलेजा फोड़े की तरह पक रहा था, इस बात के कहने की ज़रूरत नहीं। गुरु साहब ने आदि ग्रन्थ का नया संस्करण किया, अमृत्सर की झील के बीच मन्दिर बनाया व नगर बसाया जिसमें आमदनी बहुत बढ़गयी क्योंकि सिक्खों का मक्का
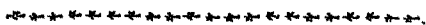
सिक्खों के प्रान्त के मध्य में बना था। अमृतसर का पहले नाम तरन तारन व गुरु का चक्र था। अकबर की भी इनके प्रति भक्ति रही। इनके कहने से अकबर ने इनके प्रान्त का एक वर्ष का भूमि का कर छोड़दिया। इन बातों से सिक्ख सम्प्रदाय के प्रति बहुतसा धन व जन आकृष्ट हुआ।

इन्होंने २२ ठिकानों में अपनी भेंट उगाहनेवाले देशमुख स्थापित किये। भेंट सिक्खों की इच्छा के अनुसार पक्की तरह से नियत करली थी जिसमें विना किसी कष्ट व असन्तोष के धन कोष में आता रहा। तीसरे इन्होंने अपने शिष्यों को तुरकिस्तान से घोड़े लाकर वेचने का परामर्श दिया और उन्होंने इस काम को तुरन्त करना आरम्भ करदिया। इस बात में खानपान का बन्धन टूटा, सिक्खों में धन की वृद्धि हुई और साथही घोड़े पर चढ़ने का प्रेम उत्पन्न हुआ। इस तरह गुरू अर्जुन ने सिक्खों में सच्ची जान डालदी बालक सिक्ख सम्प्रदाय को युवा सिक्ख सम्प्रदाय बनादिया।

अन्त में बादशाह के पुत्र खुसरू को, जो राज विद्रोही होगया था शरण व सहायता देने से इन पर बादशाह का कोप हुआ। दूसरी ओर चन्दू साह लाहौर के हाकिम ने इनके लड़के के साथ अपनी पुत्री का विवाह करना चाहा, इन्होंने बारम्बार उसकी प्रार्थना अस्वीकार की जिसके कारण वह इनका घातक शत्रु बनगया और बादशाह के कान भरने लगा। अन्त में सम्वत् १६६४ में मुसलमानों की खड्ग तले प्राण समर्पण करना पड़ा।

गुरुगोविन्द को बहुत सताया गया, इनके पीछे सिक्ख, पर

मुसलमानी अत्याचार बढ़ते ही गये। देश निकाला, कारागार व फांसी साधारण दण्ड थे जो सिक्खों के हिस्से में आये तारुसिंह, मनीराम, हक़ीक़तराय, तेग़बहादुर और हमारे चरित्रनायक के पुत्रों के पवित्र रक्त को मुहम्मदी तलवार ने पिया यह सिक्ख इतिहास के जाननेवालों से छुपा नही है।

छठे गुरु हरगोविन्ददेव

१६६४ में छठे गुरु हरगोविन्ददेव अपने पिता के उत्तराधिकारी हुए। इन्हीं के समय से सिक्खों ने मुसलमानी अत्याचार के विरुद्ध खड्ग उठाना आरम्भ किया और अपनी गुप्त शक्ति का परिचय पाया। इन्होंने मुग़लों को ४ भारी पराजय दीं, जिससे मुग़लों के छक्के छूट गये। इनके समय में सिक्खों का इतना बल व वैभव बढ़ा कि लोग जान गये कि प्रजा का बल कैसा होता है। हमारे पाठक यदि सिक्ख इतिहास पढ़ने का कष्ट करेंगे तो ज्ञात होगा कि गुरुहरगोविन्द के समय से सिक्खों का नया शाका आरम्भ होता है। आप कभी शत्रुदल के पंजे में नहीं फंसे और शान्ति पूर्वक विजय लक्ष्मी को आलिङ्गन करते हुए हिन्दू धर्म के सुधार व उद्धार का काम करते करते सम्वत् १७०१ में स्वर्गधाम पधारे।

सप्तम गुरु हररायदेव

इनके पश्चात् सप्तम गुरु हररायदेव का समय आया आप १७०२ में गद्दी पर बैठे और १७ वर्ष हिन्दू धर्म की सेवा करके स्वर्गवासी होगए। आप बड़ेही शान्ति प्रिय और

धर्मात्मा थे, आपको मुसलमानों की मुठभेड़ नहीं करनी पडी परन्तु सिक्ख लोग किसी प्रकार से हिम्मत नहीं हारे थे, यद्यपि औरङ्गज़ेव का सा कड़ा लोहा सिर पर था।

अष्टम गुरु हरकिशनदेव

अष्टम गुरु हरकिशनदेव पांचवर्ष की ही अवस्था में गद्दी पर बैठे और आठवर्ष की अवस्था में विस्फोटक रोग से स्वर्गवासी हुए। मरने के समय आपने गद्दी का अधिकार स्वरूप खड्ग व छत्र अपने दादा के छोटे भाई गुरु तेग़बहादुर के पास भेजदिया था। हरराय का बड़ाभाई रामराय अब तक भी मुग़लों का हितू बना हुआ औरङ्गजेबी दरबार में गद्दी का स्वप्न देख रहा था और समय समय पर बादशाह के कान भरता था।

नवें गुरु तेग़बहादुर

सिक्खों के नवम गुरु तेगबहादुर देव सम्वत् १७२१ में गद्दी पर बैठे हैं। यह बड़े ही त्यागी, शान्ति प्रिय व ईश्वरभक्त किन्तु उदार, वीर और आदर्श देश हितैषी सज्जन थे। इनके पिता ने अपनी असि (तलवार) सौंपी थी और इनका नाम तेग़बहादुर अर्थात् असिधर वीर रखा था, परन्तु यह अपने को देगबहादुर अर्थात् अन्नदान शूर कहकर प्रसन्न होते थे। सिक्खों में मुग़लबादशाह चौकन्ना तो रहता ही था। इसने तेग बहादुर को बुलवाया परन्तु महाराज जयपुर गुरुओं के भक्त

थे उन्होंने बीच में पड़ कर इनको अपने साथ आसाम की तीर्थयात्रा में लेजाने की आज्ञा प्राप्त करली। महाराज जयसिंह व गुरु तेग़ बहादुर देवने जाकर आसाम के राजा को जीता और राजा गुरु का शिष्य हो गया।

गुरु तेग़बहादुर ने अनुमान दश वर्ष गद्दी भोगी पर बराबर घरू झगड़ों, राम राय की चालों और औरंगजेब की नीचता से दुखी रहे। आसाम से लौटने पर इन पर औरंगज़ेब ने ज़ोर दिया कि चाहे इसलाम का आलिङ्गन करो चाहे मृत्यु का। अन्त में धर्म्म वीर ने शीश दिया पर धर्म्म नदिया। मरते समय जो दोहे गुरु देव ने कहे हैं हिन्दू हृदय पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। उन दो दोहों का अन्तिम पाद है—"धर पैये धरम न दीजिये।" आपके पवित्र पुत्र गुरु गोविन्द देव हमारे चरित नायक सिक्खों के दशम व अंतिम सच्चे बादशाह हुए।

इतना पढ़कर यद्यपि सिक्ख इतिहास का यथार्थ ज्ञान व गौरव पाठकों को विदित नहीं हो सकता तथापि दो बातें अवश्य हो सकती हैं—१ सिक्ख इतिहास पढ़ने का प्रेम उनमें जागृत होगा और उनके द्वारा उन्हें कर्म वीरता, देश प्रेम और आत्म सम्मान की दीक्षा मिलेगी, (२) जो कुछ हम आगे कहेंगे उसका ज्ञान ठीक ठीक होगा। याद रहे कि जिसके पिता का इस निर्दयता से अकारणवध हुआ हो जिसकी जाति को (हिन्दू या आर्य्य) इतना सताया गया हो, जिसकी समुदाय व सम्प्रदाय का नित्य रक्त पिया जाता हो उसका वंशधर गुरु गोविन्द कैसा हो सकता है।

इतनी ही सूक्ष्मप्रस्तावना व नाममात्र सिक्ख इतिहास

के साथ हम गुरुगोविन्द देव का पवित्र चरित्र आरम्भ करते हैं। अन्त में इतना कहना हमारा धर्म्म है कि हमने अपनी प्रस्तावना में अपने परम मित्र लाला गोकुलचन्द जी नारंग एम० ए०, डाक्टर आफ़ फ़िलासफ़ी, बार-एट-ला, भूतपूर्व अध्यापक डी०ए०वी० कालेज के ग्रंथसे जिसका नाम ट्रांसफार्मेशन आफ सिक्खिजम है, बहुत सहायता ली है। मैंने लाला जी से आज्ञा नहीं ली, क्योंकि मुझे आपकी मित्रता पर इतना अभिमान है कि आज्ञा लेना मैंने उस प्रगाढ़ मित्रता का अपमान करना समझा।

साथ ही यह भी कह देना उचित होगा मूल चरित्र में मैंने कई अंगरेज़ी व हिन्दी लेखकों से सहायता ली है किन्तु प्रधानता में सरदार लक्ष्मण सिंह और पूर्व प्रकाशित लाला साहब का ही ऋणी हूं।

विद्वानों का पादानुरक्त
राधामोहन गोकुल.जी (राधे)

प्रथम अध्याय

गुरु गोविन्दसिंह का जन्म

जब गुरु तेगबहादुर आसाम की तीर्थयात्रा पर गये थे, जिसका हमने प्रस्तावना में सूक्ष्म वृत्तान्त दे दिया है, तभी पटने में शुक्रवार १३ पौष विक्रम सम्वत् १७२३ (सन् १६६६) को गुरु गोविन्दने जन्म लिया। जयपुर के महाराज के साथ गुरु तेगबहादुर कामरूप से ११ महीने पीछे आये इन्होंने अपनी माता व स्त्री को आनन्दपूर को जो हिमालय के तटपर इन्होंने बसाया था, जानेको कहा पर उन्होंने रामराय और अन्य सोठियों के भय से पटना ही रहना पसंद किया। गुरु गोविन्द के जन्म पर बहुत से सिक्ख भेंट लेकर पटने आये थें उन्हें गुरुगोविन्दजी के मामा श्री कृपालचद ने बहुत सा उपहार देकर विदा किया। चारों ओर आनन्द बधाये बजने लगे क्योंकि बिहार में कोई गुरुसाहबों का द्रोही और अहित चाहने वाला न था। गुरु तेगबहादुर अकेले आनन्दपूर गये। उधर पञ्जाब में इनके लौटने की आशा लोग छोड चुके थे और औरङ्गज़ेब के दरबार में रामराय को गद्दी देने का कुचक्र बल पकड़ने लगा था।

गुरु गोविन्द पटने में ही अपनी दादी व मा और मामा के पास पलते रहे। पाँच वर्ष की अवस्था तक यह पटना में ही रहे। इसी अवस्था में इनका भविष्य झलकने लगा था। सच है-'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। इनके खेलमें,

इनकी बातचीत में, इनके रँग ढँग में सरदारी का प्रकाश प्रकट दीखता था। लड़कों को इकट्ठा करके सरदार बनना, वीरोचित खेल खेलना, बनावटी लड़ाई व चांदमारी करना, गुरुगोविन्द के बालकपन के काम थे। फिर खेल ही नहीं, सरदारी भी थी, जो बालक जीतता उसे पुरस्कार देते। नावों की दौड़ और घोड़ों की दौड़ कराने व देखने का इन्हें विशेष प्रेम था। यह पटने में इतने प्रिय व प्रसिद्ध होगये जिन सिक्खोंके दबानेपर गुरु तेग बहादुर ने घरबार फिर पञ्जाब में बुलाया तो बालक गोविन्द के वियोग से सारा नगर अधीर होन लगा, क्या स्त्री क्या पुरुष कोई ऐसा न था जिसके कलेजे पर गोविन्द का वियोग न कसका हो। आहा, इन्हें क्या मालूम था पटना गोविन्द के जन्म से भारत के इतिहास में चिर कीर्ति प्राप्त कर चुका है और यह बालक साधारण प्यारा भोला बालक नहीं किन्तु हिन्दू राष्ट्र का निर्माता महात्मा है जिससे भारत महाप्रलय तक अभिमान करेगा।

गुरुगोविन्द के आनदपुर पहुंचने पर प्रार्थनाएं हुईं, दान दिये गये, हज़ारों गरीबों को भोजन दिया गया, मुल्तान, सिंध काबुल, कन्धार, ढानी इत्यादि इत्यादि से सिक्ख लोग भेंटें लाये। भेंटों में तुर्किस्तान, ख़ुरासान; अरब और पारस के घोड़े काबुल कन्धार के तीर और नाना प्रकारके हथियार थे। गुरुगोविन्द ने इन भेंटों को बहुतही पसद किया और अनेक पदार्थ अपने साथ के खेलने वालों को बांट दिये। ७ वर्ष का बालक गोविन्द शिकार खेलने जाता और अपनी वीरधीर आकृति अपने मुख की कान्ति और सब से अधिक अपनी पूर्व बोली से (क्योंकि पटने से गये थे) लोगों का मन मोहने लगा। उसी

अवस्था में इसे गुरु तेगबहादुर ने साहब चन्द ग्रंथी के पास विद्या अध्ययन के लिये बिठलाया। होनहार बालक ने थोड़े ही समय में आदिग्रन्थ पढ़ लिया और अपने पठन और उच्चारण में लोगों को चकित करने लगा। साढ़े सात वर्ष के ऊपर इसे काज़ी पीर मुहम्मद ने पारसी पढ़ानी आरम्भ की और एक चतुर राजपुत्र रण कौशल सिखाने पर नियत हुआ। करोड़ों के दलपति सच्चे बादशाह गुरु तेग़-बहादुर का पुत्र फिर होनहार असाधारण शक्ति सम्पन्न गुरु गोविन्द पञ्जाब के एक एक के हृदय में विराजने लगा।

जिस समय हमारा धार्मिक वीर चरित्र नायक बाल लीला में अपने भविष्य वैभव का पता दे रहा था। उस समय दिल्ली की राजगद्दी पर पिता को बन्दी करने द्वारा भाइयों का घातक आतताई औरंगज़ेब बैठा था। इसके अन्याय से हिन्दू तो हिन्दू मुसलमानों का भी कलेजा कांप उठा। दक्खिन बंगाल, बिहार आदि सब जगह के गवर्नर आततायी के हाथों से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगे। मक्के के प्रधान धर्म याजक, पारस के अब्बास शाह भी इससे घृणा करने लगे और इसकी भेटें लौटा दीं। भूषण ने सच कहा है—

किबले की ठौर बाप बादशाह शाहजहां,
ताको कियो क़ैद मानो मक्के आग लाई है।
बड़ो भाई दारा वाको पकर क़तल कियो,
मेहर न कीन्ही मा ज्यायो सगो भाई है।
बन्धु तो मुराद वक्स वादि चूक करिबे को,
बीचलै कुरान खुदा नबी सौंह खाई है।
भूषन भनत साची सुनो नौरंगजेब,
येतैं काम कीन्हे तऊ पातसाही पाई है॥ १॥

औरंगजेब के समय में हिन्दूओ पर जिहाद करना मामूली बात थी। बड़े २ ओहदे हिन्दूओं को मिलने बन्द हुए, शाशक व शाशित में भेद सीमातीत होने लगा, संस्कृत पढना, तीर्थ करना हिन्दुओं के लिये कठिन हो गया था। औरंगजेब की तलवार निस्सन्देह भारत को हिन्दू विहीन कर डालती यदि पजाब में सिक्ख सम्प्रदाय व दक्खिन में छत्रपति शिवाजी न होते। हमें फिर भी भूषन कवि की एक कविता याद आती है जो प्रसग वश शिवाबावनी से उद्धृत करके नीचे दी जाती है।

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राजा राव सबे गये लबकी।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
अपनीही वार सब मारगये दबकी।
पीरा पैगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही वात रबकी।
कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
शिवाजी जो न होतो तो सुन्नत होत सबकी ॥१॥
साचको न मानै देवी देवता न जानै,
अब ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की।
और पातसाहन के हुती चाह हिन्दुन की,
अकबर साहजहा कहैं साखि तब की।
बब्बर कैतिब्बर हुमायू हद बाधि गये,
दो मैं एक करो ना कुरान वेद ढबकी।
कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवा जो न होतो तो सुन्नत होत सबकी ॥२॥

कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रबकी।
खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाके,
लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तब की ॥
भूषन भनत भाग्यो कासी पति विश्वनाथ,
और कौन गिनती में भूली गति भव की।
चारौं वर्ण धर्म छोंडि कलमा नेवाज पढि,
शिवा जो न होतो तो सुन्नत होत सब की।

अध्याय दूसरा

गुरु तेग़बहादुर का प्राणदान

हम औरंगजेबी अत्याचार को दोचार शब्दों में बतला चुके हैं गली गली भारत में मुल्ले एक हाथ में खड्ग और दूसरे में कुरान लिये फिरते थे, 'कलमा या मौत दो में एक स्वीकार करो' की ध्वनि भारत में गूंजती थी। तब कुछ लोगों ने कशमीर से भागकर गुरु तेग़बहादुर की शरण ली। इस घटना के सम्बन्ध में नाना प्रकार की दन्तकथाएं हैं। पर जो दो कश्मीरियों ने शरण मांगी और वीर प्रवर गुरु तेग़बहादुर ने अनुग्रह के साथ इन्हें शरण दी। वह सच्ची ऐतिहासिक घटना है। शरणागतों की बात सुनकर गुरू के नेत्रों से जल पड़ने लगा और आपने कहा "जब तक कोई ईश्वर का लाल हवन न होगा ईश्वर की प्रजा का यह घोर सन्ताप नहीं मिट सकता"। यह बात सुनकर सारा दरबार अवाक होगया पिता की गोद में ९ वर्ष का बच्चा गोविन्द बैठा था, उससे न रहा गया और गोद से उठकर दण्डवत प्रणाम पूर्वक सामने बैठकर बोला—"पिता जी आप धर्म्म के अवतार हैं आप ही इन दुखियों के लिए प्राण दें, और कौन इन्हें बचाने आयेगा।"

बालक गोविन्द की बात सुनकर सारा दरबार दंग रह गया और कभी पिता की मुख की ओर कभी वीर पुत्र के मुख की ओर देखने लगा। वीर गुरु तेग़बहादुर असाधारण

पुरुष थे उनका जन्म संसार में हिन्दुओं के निमित्त बलि होने को ही हुआ था। आपने बड़ी धीरता से कश्मीरी ब्राह्मणों को आज्ञा दी—"अच्छा बादशाह को लिखो कि जो गुरू तेग़-बहादुर हिन्दुओं के नेता कलमा पढ़ लेंगे तो हम सब भी कलमा पढ़ लेंगे। नहीं तो हम सब को पूर्ववत् अपने धर्म का पालन करने दीजिये।"

लोग समझे कि गुरू महाराज अपनी करामात से बच जांयगे और हमे भी बचालेंगे, तो भी ऐसे पत्र के लिखने में आगा पीछा करने लगे। गुरू महाराज के शत्रु सोढी लोग भी मौजूद थे। इन्होंने पण्डितों को पत्र लिखने के लिये उत्साहित किया सोढ़ी समझते थे कि गुरू महाराज की मृत्यु के उपरान्त गद्दी रामराय को या यों कहें कि सोढी घराने को मिल जायगी पर यह इनका भ्रम ही सिद्ध हुआ। औरंगज़ेब को पत्र लिखा गया। पत्र पाकर औरङ्गज़ेब ने काज़ी मुल्लों की सभा आवाहन की और उनके सामने यह प्रश्न रक्खा। सभा के निश्चय के अनुसार गुरू तेग़बहादुर को दिल्ली बुलाया गया गुरू ने दरबारी आदमियों से कह दिया कि आप लोग चलें मैं अपने लोगों को साथ लेकर दिल्ली आऊंगा। और बालक गोविन्द को सब काम काज समझा व सम्हाल कर गुरू साहब ने दिल्ली को प्रस्थान किया।

गुरू साहब स्थान २ पर धर्मोपदेश करते धीरे धीरे जा रहे थे, उधर औरङ्गज़ेब ने उनके ढूढने को चारों ओर चर छोड़ दिये और गुरू साहब का मस्तक लानेवाले के लिये बड़ा भारी पुरस्कार नियत कर दिया। इसका कारण सम्भवतः

यह था कि गुरू साहब प्रथम तो हल्की मंजलें करते थे, फिर अपनी शिष्य भाग की प्रार्थना के अनुसार उसे दर्शन देने को आगरे चले गये थे जिससे दिल्ली पहुंचने में देर होगई साथ ही आगरे के एक ग़रीब सय्यद ने प्रार्थना की कि आप स्वयम् न जाकर जो मेरे बन्धन में औरङ्गजेब के सन्मुख चलें तो मुझे पुरस्कार मिलेगा । सार यह कि गुरू तेग़बहादुर आगरे के पास एक बाग़ में बन्दी किये गये ।

यहां से दिल्ली लाये जाने पर इन्हें एक टूटे फूटे घर में जगह दी गई जिसमें भूतों चुड़ैलों का भय था व कई आदमी मर भी चुके थे, पर गुरु साहब का एक बाल भी बांका न हुआ । दूसरे दिन इन्हें बादशाह ने दरबार में बुलाकर, बादशाही महल की लड़की से ब्याह करदेने, पञ्जाब का सूबा बनाने, और सारे भारत के मुसलमानी धर्म्म याजकों का महन्त बनाने आदि का प्रलोभन दिया और कहा कि आप मुसलमान होजायें । गुरु साहब ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया कि:— "परमात्मा पक्षपाती नहीं है, उसे हिन्दू मुसलमान बराबर हैं धार्मिकता मनुष्य के कामों में होती है मुख से किसी धर्म के मानने में नहीं।" साथही और भी अनेक सदुपदेश दिये लेकिन औरङ्गजेब सा आततायी कब सुनता था, उसने शारीरिक दण्ड देकर इनको वश में लाने की आज्ञा दी।

दूसरी बार फिर गुरु साहब को साथियों सहित दरबार में बुलाकर औरङ्गजेब ने 'मिथ्या धर्म' त्यागने व 'सत्य धर्म इसलाम' के ग्रहण करने को कहा । इस पर क्रुद्ध होकर धर्मवलि दीवान श्री मतिराम ने कहा, "मुसलमान धर्म मिथ्या

है सिक्ख धर्म मिथ्या नहीं है, जो परमात्मा इसलाम को अच्छा समझता तो मनुष्य को ख़तना (मुसलमानी) किया हुआ पैदा करता।" इस बात से नाराज़ होकर औरंगज़ेब ने सत्यवादी मतिराम को टुकड़े टुकड़े करवाडाला। तब तो माननीय भाई श्री दयालुदेव से न रहा गया उन्होंने औरंगज़ेब को दुष्ट अत्याचारी और निर्दयी कहकर श्राप दिया, 'हे दुष्ट तेरे राज और कुल का शीघ्रही पतन होगा'। औरङ्गज़ेब ने आग बबूला होकर इन्हें भी खौलते कड़ाह में छुड़वादिया और गुरु महराज को विचार करने को तीसरी बार फिर समय दिया और सावधान करदिया कि जो तुम मुहम्मदी धर्म को स्वीकार न करोगे तो जो दशा इन दो की हुई तुम्हारी भी होगी।

गुरुदेव उसके हाथ से अत्याचारपूर्ण खड्ग द्वारा अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए ईश्वराराधन करने लगे। एक दिन गुरु महाराज पर यह मिथ्या अपराध लगाया गया कि वे बादशाही अन्तःपुर की ओर देखते थे। गुरु ने उत्तर दिया "यह तो असत्य है, पर मैं दक्षिण की ओर देखता था जहां से समुद्र पार होकर एक सफ़ेद रंग की जाति आकर मुग़लों की गद्दी पर अधिकार करके राजकीय अन्तःपुर का अभिमान विदूरित करेगी।" इस भविष्यद्वाणी से क्रुद्ध हो दुष्ट औरंगज़ेब ने गुरु साहब को चांदनी चौकमें खड़ा करके उनका सिर छेदन कराया सिर ज्योंहो कुछ दूर पर जाकर पड़ा कि साहसी भाई जेठाने उठाकर आनन्दपुर भेज दिया वहां दाह किया हुई। धड़को सांयकाल में सिख लोगों ने उठा ले जाकर वहां ही अग्नि संस्कार किया। सम्वत् १७३२ वि० की

मार्ग शीर्ष सुक्ला पञ्चमी गुरु महाराज के वलि होने की तिथि भारत के इतिहास में चिरकाल तक रक्त के अक्षरों में अंकित रहेगी और भारतवासी हिन्दुओं को अपना ऋण उतारने की याद दिलातीरहेगी व अपने कर्तव्य पालन की शिक्षा देती रहेगी।

गुरु तेग वहादुर के ऊपर जो अत्याचार होते थे, उनकी सूचना आनन्दपुर पहुंचती रहती थी, गुरु देव तथा दो वीर धार्मिक शिष्यों की आहुति का समाचार जव माता श्री नानकी देवी को मिलातो वह पुत्र स्नेह से विकल हुई पर हमारे चरित्र नायक ने अपनी दादी को समझाकर कहा कि आपको उलटा सन्तोष होना चाहिये कि आपका पुत्र उस उच्चगति को प्राप्त होता है जो मृत्यु से कहीं अधिक मूल्यवान और प्रतिष्ठित है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि हमारा चरित्र नायक किस धातु का वना था। एक तो जन्म से ही पवित्र वीरात्मा, फिर गुरु तेगवहादुर का पुत्र और यवनों के अत्याचार पूर्ण समय में उत्पन्न वीर गोविन्द जी अपने पिता के साथ अत्याचार करनेवालों से वदला लेने को और भी उत्सुक होकर मिती वैसाख कृष्णा प्रतिपदा सं० १७३२ को सिंहासनासीन हुये इन्हीं दशम या अन्तिम सिक्ख वादशाही का ऐतिहासिक वृत्तान्त हम अपने पाठकों की भेंट करते हैं।

तीसरा अध्याय

सिक्खों का नया संस्कार गुरुगोविन्द सिंह के हाथ से

गुरू महाराज बड़े समझदार थे आप समझते थे कि मैं बालक हूं और बदला लेने का काम बहुत बड़े प्रबन्ध का है जल्दी करने से काम न चलेगा। आपने विद्याभ्यास आरम्भ कर दिया आपको विद्वानों से प्रेम था बीसों विद्वान दरबार के वेतन भोजी थे, अनेक कवि गुरु के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। कितने ही संस्कृत ग्रंथ का भाषानुवाद हुआ गुरूगोविन्द प्रातक्रिया के पश्चात् जपजी का पाठ व ईश्वरोपासना के अनन्तर आने वाले भक्तों से मिलते और भोजन कराते तदुपरान्त अपने घर में रहते।

इन्होंने गुरु हरगोविन्द के समय केवीरों को बुलाया और दरबार में उच्चस्थान दिया। इन वीरों ने भी पीछे बड़े बड़े मार्के के काम किये जो यथा स्थान नीचे गिनायेंजायंगे। सांयकाल भी गुरु गोविन्द गुरुद्वारे जाते और दूसरे दिन के करने के काम निश्चित करते और बहुत रात तक ठहरते। गुरु गोविन्द सच्चे राष्ट्र निम्मार्ता थे आपकी कविता बड़ी ओजस्विनी, भाव पूर्ण और प्रतिभा युता होती थी। आपकी वक्तृताएं श्रोताओं को उत्तेजित ही नहीं करती थी किन्तु उनमें उच्च विचारों का सञ्चार भी करती थीं।

, वैसाखी के एक उत्सव पर बलख बुखारे और कन्धार के शिष्यों ने दुनीचन्द के मारफ़त एक ऊनी शामियाना भेजा जिसकी तुलना करने को कोई शिविर बादशाही दरबार में भी न था। काम रूपके राजा रतनराय, राजा रामराय गुरू तेगबहादुर के शिष्य का लडका दीप मालिका के दिन गुरू को भेंट देने स्वयम् आश्रम में आया था। कहते हैं यह गुरू साहब के ही आशीर्वाद से राजा रामराय.के यहां जन्मा था। इसने गुरू को एक स्वेत मस्तक का एक हाथी भेट किया जिसका नाम परशादी था।

गुरू गोविन्द के समय में मसनदों की दशा बिगड रही थी मसनदों के स्वामी जो गुरू के प्रताप से सर्वत्र पुजाहें हो रहे थे। सुखमें डूब कर अपनी क्रूरता के कारण प्रजा में घृणा-स्पद हो चले थे। परन्तु कोई गुरुदेव के सामने मसनदों की शिकायत करने की हिम्मत न करता था। एक बार दरबार में भांडों ने औसर पाकर मसनदों की बुराई का चित्र गुरू के सामने खींचा। एक मसनद धारी अपनी वेश्या को लेकर शिष्य के यहां गया और बडी निर्लज्जता से व्यवहार किया। यही इस नकल का सार था जिसे देख सुनकर गुरूगोविन्द का वीर, धार्मिक और न्यायशील हृदय कांप उठा तुरन्त गुरूदेव ने सभा उठा दी और दूत भेजकर मसनदों को लोहे की सांकलो में बंधवा मगाया और यथोचित दण्ड दिया किसी को कोडों से पिटवाया। किसी को लूटा हुआ धन लेकर उचित स्वामी को लौटा दिया। जो निर्दोष थे उन्हें छोड़ दिया और मस-नदें तोड़दीं।

यह वह समय भारत का था कि एक ओर तो हिन्दू सम-

झते थे कि हम ब्राह्मणों को सर्वस्व देकर वैकुण्ठ के पट्टे-दार बन सकते हैं जैसा कि कभी ईसाइयों का पोपों के द्वारा धन देकर वैकुंठ खरीदने का विश्वास था दूसरी ओर मुसलमान हिन्दू रक्तके प्यासे फिरते थे मन्दिर बनाना, तिलक लगाना पूजा पाठ करना और कथा सुनना अन्याय होरहा था। काशीमें आरे से मूर्ख लोग गले कटाते विधवाओं को जला देते व जन्म से मरण पर्यन्त स्वार्थी पुरोहित मण्डल के हाथों लुटने रहते थे और अगणित देवताओं या ईश्वरों की उपासना और अगणित जातियों के भेद भाव ने जाति को निर्वीज कर दिया था। दूसरी ओर मुगलों को यह झक चढ़ी थी कि तलवार के ज़ोर से हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर ज़बरदस्ती स्वर्ग में हूरें दिलानां ही हमारा प्रधान कर्तव्य है।

इस समय सिक्ख लोग सिद्धान्तों में एक प्रकार से हिंदुओसे भिन्न समझे जाते थे जैसे आज कल आर्यसमाज के लोग समझे जाते हैं इतना होने पर भी सिक्ख हिन्दू ही थे व हैं अन्तर अब बात में यही है गुरू गोविन्द के पहले यह लोग पुरोहिती फन्दों से केवल चतुर्थांश ही मुक्त हुये थे। अनेकों रीति रिवाज चाल ढाल देवी देवताओं के बन्धन भीतर ज्यों के त्यों नहीं तो अधिकांश में बने ही थे। गुरू गोविन्द से यह बात न देखी गई कि केवल मुंह से कहने, गाने बजाने पूजा पाठ में सिक्ख सिक्ख हो बाकी सब कामों में वही हिन्दू जिनमें न भाई प्रेम न एक धर्म सिद्धान्त न एक देव की उपासना न एक हिन्दू जातीयता का भाव।

एक दिन महाभारत में हवन का बड़ा महात्म निकला।

पंडित केशवदास कथा वांचने वाले ने और भी नमक मिर्च लगाकर कहा कि काली को हवन द्वारा प्रसन्न कर आह्वान करे तो काली का साक्षात्कार हो सकता है और उसकी अनुग्रह से सब मनोरथ सफल होने सहज हैं और श्रोताओं ने गुरू सा० को हवन करने का परामर्श दिया और बहुतों ने जोर डाला। गुरुदेव इन बे सिर पैर की बातों से घृणा करते थे। पर उन्होंने अपने शिष्यों को पक्का शिष्य बनाने के अभिप्राय से हवन की बहुत बड़ी तयारी की। हवन बड़े समारोह से होने लगा। पण्डित केशवदेव प्रधान पुरोहित हुए। कई सप्ताह हवन होते बीत गये पर कालीदेवी का कहीं पता न चला तब गुरू साहब ने पुरोहित राज से कहा कि कहिये आपका कथन जैसा मैंने कहा था मिथ्या निकला न? पुरोहित ने उत्तर दिया, महाराज यदि कोई धार्मिक पुरुष का बलिदान हो तो काली अवश्य प्रकट हो, गुरू महाराज छल को समझ गये वे कहने लगे पुरोहित जी आपसे अधिक धार्मिक इस समूह में मुझे दूसरा नहीं दीखता। इसलिये आपको ही काली की भेंट करूंगा।

वीर गोविन्द के वाक्य सुन पुरोहित जी के हाथों के तोते उड़ गये और रात को जो हाथ पड़ा ले देकर चलते बने। गुरू गोविन्द देव ने दूसरे दिन उसे खोजा व शिष्यों को इस प्रकार की वेहूदा बातों पर विश्वास न रखने की शिक्षा दी और सायं-काल में सारी बची हुई सामिग्री और घृत आग में एक दम डलवा दी इससे अग्नि की ज्वाला आकाश से बातें करने लगी। पहाड़ के ग्रामवालों ने समझा कि काली आगयी उसका यह सारा प्रकाश है और सब गुरु देव के पास को दौड़ पड़े। दूसरे दिन

होते होते कई सहस्र सिक्खों व हिन्दुओं की भीड़ इकट्ठी होगई। गुरुदेव ने सारी बात कहकर उनकी मिथ्या धर्मान्धकता दूर की। पर गुरुदेव के हृदय में देशवासियों के अन्ध विश्वास का ऐसा ध्यान जमा कि उदास रहने लगे और एकान्त में ईश्वराराधन व प्रार्थना के सिवा सब काम छोड सा दिया। इससे लोगों को बड़ा दुख हुआ विशेष करके सिक्ख समुदाय को असह्य दुख हुआ कि उनका गुरुदेव विक्षिप्त की भांति पड़ा रहता है, हंसना बोलना खेल कूद प्रेम व्यवहार सब छोड़ बैठा।

इसी अवस्था में गुरुदेव के मन में एक ईश्वर की ओर से कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि आप नंगी तलवार ले डेरे के बाहर निकल आये और उपस्थित जन समूह से बोले।

"अब देखो सच्ची कालिका आई है बतलाओ! तुम में से ऐसे कौन हैं जो गुरुदेव के निमित्त जाति के निमित्त देश व धर्म के निमित्त अपने प्राण हवन कर सकते हैं।

यह सुन सारा शिष्यवृन्द अवाक रहगया सबके मुंह उतर गये श्वास की सुध जाती रही। फिर गुरु ने वही प्रश्न दुहराया। इस बार एक वीर दयाराम क्षत्री ने उठकर अपना शीश देना स्वीकार किया। गुरुदेव ने लेजाकर इन्हें डेरे में बिठा दिया और एक बकरे को इतनी ज़ोर से काटा कि तलवार का खडाका बाहर तक सुनाई दिया। और फिर निकल कर वही प्रश्न किया। इस बार धर्मा जाट खड़ा हुआ और उसकी भी दयाराम की सी गति हुई रुधिर की धारा शिविर के भीतर से बह निकली। इधर निकाले हुये मसनदाधीश जो मौजूद थे

दौड़े और जाकर गुरुदेव की माता को सूचना दी कि गुरुदेव वास्तव में पागल होगये और दो मनुष्यों के सिर काट डाले न जाने और कितनों के प्राण जायंगे। जब तक माता जी का दूत आवे आवे कि यहां तीन और व्यक्तियों की यही दशा हुई इनमें हिम्मत कहार सहेवा नापित और मोहकम धोबी थे।

दस मिनट पीछे पांचों ही वीर नये वस्त्र धारण किये डेरे से निकले और सब उपस्थित समूह दंग रह गया। गुरू ने ललकार कर कहा देखो यह गुरुदेव के लाडले हैं हमें ऐसे शिष्यों की आवश्यकता है। यह पांचों लाडले सिक्ख इतिहास के भूषण हुए हैं जो गुरू के बराबर दाहिने बायें वेदी पर बैठा करते थे गुरुदेव समझते थे कि मेरे सिक्खों में ऐसे और अनेक वीर हैं जो धर्म के लिये प्राण देना खेल समझते हैं। सुतराम जब गुरू ने फिर पूछा "हमारे साथ क्या हमारे सिख हैं" समुदायने उत्तर में 'सत श्री अखिल' की घोर ध्वनि की इस तरह पर वह सिक्खोंका अभिनव संस्कार श्रीगुरू गोविन्ददेव जी के हाथों से हुआ जिसने इतिहास में अपना वह नाम किया, हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये वह काम किया जिसके लिये हिन्दू जाति यदि कृतघ्न न होगी तो उन की चिर ऋणी, जैसी कि वास्तव में है, अपने को सदा सर्वदा स्वीकार करती रहेगी।

चौथा अध्याय

सिख धर्म्म का नया रूप व गुरुगोविन्द की शिक्षा

प्रथम वैसाख सं० १७५६ वि० को गुरु देव ने एक दरबार किया जिसमें सिक्ख लोग बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हुये गुरु देव स्वेत वस्त्र धारण करके गद्दी पर विराजे और अपने पांचों लाड़लों को बुलाकर आज्ञा दी कि परमात्मा के प्रति मन एकाग्रकर तीनवार "वाह गुरु" "वाह गुरु" "वाह गुरु" कहो। इसके पश्चात् एक लोहे के कटोरे में शरबत बनाकर मँगाया गया, गुरुदेव ने अपने बाये हाथमें प्याला रख कर दाहिने हाथ से अपने दुधारे खाड़े की नोक से शरबत को चलाया और ईश्वर की स्तुति करते गये, इस तरह अमृत तय्यार करके पहले पांचों लाडलों को छकाया गया। अमृत लाडलों ने 'वाह गुरु जी का खालसा' की ध्वनि की और साथ ही 'श्री वाह गुरु जी की फ़तेह बोली। इसके उपरान्त उन्होंने भजन गाये और कड़ाह प्रसाद लिया। इस अमृत छकने व कड़ाह प्रसाद लेने में किसी प्रकार का जाति पांति का भेद नहीं रखा गया। इस तरह गुरु गोविन्द ने पांच आदमियों से सिक्ख सम्प्रदाय की पवित्र नींव डाली और जाति पांति का भेद छेदकर सच्चा भाइप स्थापित किया। इसके उपरान्त जो लोग सिक्ख धर्म्म में भक्त हुये सब को इसी रीति के अनुसार अमृत छका कर

सिक्ख बनाया गया। यह प्रथा अब भी सिक्खों में चली आती है।

भारत में इस समय अछूत, शूद्र व अन्त्यज के नाम से समाज का एक बहुत बड़ा अंश घृणा से देखा जाता है और अब भी बहुत अंश में यह दोष हिन्दू समाज में मौजूद है। अनेक और दोषों के साथ यह भी एक ऐसा बड़ा भारी दोष है कि जिसने हिन्दुओं की जातीयता, भाइप प्रेम का नाश करके हिन्दुओं को सदा के लिये गुलाम, निकम्मा, स्वार्थ परायण और बन्धु द्रोही बना दिया। गुरु गोविन्द देव ने इस दोष को अपने वृन्द में से हटाया अपनी समुदाय का नाम खालसा अर्थात् विशुद्ध रखा और प्रत्येक को सिंह बनाया। उन्होंने इन नये वीरों को वस्त्र सैनिकोचित पहरने की आज्ञा दी, तमाकू पीना छुड़वाया, हथियार का हर समय पास रखना परम धर्म्म नियत किया। धार्मिक व ईमानदार होनेके साथ साथ अपने सिक्ख भाई के लिये मरना ही सिक्ख धर्म्म का प्रधान अंग बना, जैसा कि प्रत्येक आर्य का धर्म्म किसी समय था।

जिस देश के निवासी परस्पर भेद भाव रखते हैं, जन्म के ही कारण ऊंचे नीचे का विचार रखते है, माने हुये उच्च-वंश के नीच दुराचारी, मूर्ख को मनो कल्पित छोटी जाति के धर्मात्मा सदाचारी पण्डित से अच्छा व पवित्र समझा जाता है, उस देश की यही दशा होती है जो आज हिन्दुओं की है। हमारे कथन की पुष्टि इतिहास से होती है, जो चाहें रोम और ग्रीस का इतिहास देख सकते हैं। मुसलमानों का

भी पतन भेद भाव से ही हुआ और अब जिस सम्मुन्नत जाति का नाश होगा तो पक्षपात और भेद भाव के ही कारण होगा। अन्तर्जातीय झगड़ों की जड़ सदा भेद भाव और परहित हानि कारिणी स्वार्थ परायणता से ही उत्पन्न होता है।

गुरु गोविन्दसिंह की धार्मिक शिक्षा का सार था, एक परमात्मा मात्र की उपासना, अनादि, अनन्त, दयालु, न्यायकारी, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी और सर्व सुहृद है। वह अजन्मा है अवतार नहीं लेता। इस भय से कि कहीं सिक्ख फिर पुरोहिती फन्दे में फंस पुराने हिन्दू ढकोसले में न पड़ जायं, गुरु साहब ने स्पष्ट शब्दों में अपने शिष्यों को बताया —

त्रिन कर्तार न कृत्रिम मानो। आदि अयोनि अनामय जानो।
कहा भयो जो आन जगत में दशक असुर हर घाये।
बहुत प्रपंच लखाय सभन को आपही ब्रह्म कहाये।
जड़ कैसे तोहि तारि है आप डुबो भव सागर।
काल फास से छूटन चाहो जाव शरण जगतागर।

गुरु गोविन्ददेव के कथित छन्द बहुत हैं और आपने एक सच्चा ईश्वर प्रेम ही बतलाया है। इसलिये राष्ट्र निर्म्माता के नाते, सच्चे ईश्वर की भक्ति प्रतिपादक के नाते और हिन्दू जाति व धर्म त्राता के नाते वह हिन्दू मात्र के परम प्रतिष्ठा के पात्र थे व हैं हम आपकी थोड़ी सी शिक्षा नीचे देकर इस अध्याय को समाप्त करते हैं —

'दमभलेउ सब जान मनमाही। दम्भन में परमेश्वर नाही।
जे जे कर्मकर दम्भ दिखावहि। ते प्रभु चरण गती नहि पावहि।

जीवत चालत जग के काजा। स्वांग देखकर पूजत राजा।
स्वांगन में परमेश्वर नाहीं। खोज फिरो सबही को काहीं।
अपनो मन करमो जिहि आना। पारब्रह्म को तिन पहचाना।

वेश देखाय जगत के लोगन को बश कीन।
अन्तकाल तज देह को वास नरक को लीन॥

नासा मूंद करै परनामा। फोकट धर्म न कौडी कामा।
घण्ट हिलाये स्वर्ग न जाय। मन को जीतव होत सहाय।

आपने मूंड मुड़ाकर सन्यासी होने, आलसी बन बैठने की बड़ी निन्दा की है, आप जैसे कर्मयोगी वीर और सच्चे धर्म्मनिष्ठ थे वैसीही जगत् को बनाने के लिये शिक्षा भी दी है। एक शब्द में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञानुसार गुरु नानक और गुरु गोविन्द जी की एकही शिक्षा थी और वह यह है कि —

"कर्मों के फल की वासना छोड़कर संसार में अपनी स्थिति के अनुसार कर्तव्य कर्मों को करते हुए ईश्वराराधन ही धर्म का मर्म है।"

अध्याय पाँचवाँ

गुरु गोविन्द की वैभव वृद्धि

गुरु गोविन्द की असि और आत्मा दोनों के उद्धार से जाति का सुधार करना उस समय के अनेक राजाओं व पुरोहितों को न अच्छा लगा। यह लकीर के फकीर, चूल्हे चौकेके दिवाने गुरु गोविन्द के धर्म के मर्म को कब समझ सकते थे, इन्होंने सिक्खधर्म को अपना शत्रु समझा। लेकिन इन पुरोहिती छल के छले हृदय के दासों की घृणा से क्या होता था वीर खालसा सम्प्रदाय फला और फूला। चारों ओर से वीर हृदय लोग औरंगजेब के अन्याय से सतायी हुई प्रजा गुरु साहब की शरण में बहुत बड़ी संख्या में आई। गुरुदेव जानते थे कि इससे मुगल बादशाह हमारा शत्रु होता-जाता है परन्तु आप धार्मिक वीर होकर शरणागतों को नहीं त्याग सके। इन वीरों को लेकर गुरु साहब ने एक वृहत सेना तैयार की और हिन्दुओं के दुर्भाग्य से गुरुदेव का पहिला शत्रु विलासपुर का राजा बना जिसके राज्य में आनन्दपूर था। इसने महाराज से परशादी हाथी मांगा। गुरुदेव के इनकार करने पर विलासपूर के राजा ने युद्ध की घोषणा दी। इस युद्ध की घोषणा राजा ने पुरोहित पामा की सम्मति से उसी के द्वारा कराई।

समाचार इधर उधर फैलते ही वीर सिक्ख एकत्रित हुये व कायरों हरामखोरों ने इनकी माता को समझाया कि गरु को झगड़े से रोकें। माता के समझाने पर नम्रता पूर्वक गुरु ने

उत्तर दिया कि 'अब समय दूसरा है' मैं अपने पूर्वजोंकी तरह गद्दा भोगने को संसार में नहीं हुआ किन्तु दुखियों को अत्याचार से बचाने के लिये मैं संसार में आया हूं।" सौभाग्य से दक्षिण हिमालय के राजाओं के सरदार भीमचद ने बेटे के विवाह में फंस जाने के कारण युद्ध का विचार स्वयं छोड दिया।

उधर गुरु गोविन्द ने पुत्र न होने के कारण माता की आज्ञा से दूसरा विवाह किया और नाहन के राजा मेदिनी प्रकाश और श्रीनगर के राजा फतेहशाह की पञ्चायत करके इनसे प्रेम पैदा कर लिया। नाहन वाले ने आपको अच्छी जागीर दी। और पास में एक गढ बनवा कर गुरु साहबको अपने पास रक्खा। इस बीच में गुरु हरकिशन व तेग़ बहादुर के प्राणघात में हिस्सा लेनेवाले सोढी रामराय ने गुरु से भयभीत होकर अपराध क्षमा करा लिया साथही एक मुसलमान साधू बुद्धूशाह से भी गुरु साहब की मैत्री हुई इन्हीं बुद्धू शाह के कहने से गुरु साहब ने ५०० पठानों को जिन्हें औरंगजेब ने निकाल दिया था, नौकर रख लिया। यह बात पढकर पाठक समझ सकते हैं कि गुरु साहब कितने बडे नीतिज्ञ थे।

गुरु साहब विद्या प्रेमी थे आपने अनेक उपयोगी संस्कृत ग्रन्थों की देशभाषा में टीका करायी और रघुनाथ पण्डित को सिक्खों को संस्कृत पढाने के लिये नौकर रक्खा। पण्डित को जब निश्चय हुआ कि सिक्खों में जाति पांति का भेद नहीं है, बढई, नाई, धोबी, चमार सबही सिक्ख हैं तो उसने शूद्रों को पढाने से इनकार करदिया। गुरु साहब ने पांच नवयुवकों को ब्रह्मचर्य देकर बनारस भेजदिया और यह लोग कुछ दिन

में पूर्ण विद्वान होकर आगये। इन्ही का नाम निर्मला हुआ जिनसे आज तक संन्यासियों में एक पन्थ निर्मलों का भी चला आता है। इन निर्मलों ने सिक्खों में यथा साध्य सस्कृत विद्या का प्रचार किया।

अभी मसनदवालों ने अपना जोर जहां तक बनाही रखा था इनमें से कइयों ने मिलकर रामराय को जीता जलादिया। इस अत्याचार का समाचार पोकर गरु साहब ने रामराय की स्त्री पञ्जाब कुंअर के यहां शिष्टाचार के लिये जाकर इन मसनदों में से कितने निर्दोषों को छोड़दिया, कुछ को कोड़ों से पिटवाया और कुछ को प्राण दण्ड भी दिया। इससे मसनदें डरगयी और गुरुगोविन्द का सिक्का और भी जम गया।

इस बीच में श्रीनगर के राजा फ़तेशाह की लडकी की शादी बिलासपूर के ही भीमचन्द के बेटे से हुई, भीमचन्द मन में गुरु से शत्रुता रखता था। विवाह में फ़तेहशाह ने गुरु महाराज को निमन्त्रण दिया था। पर यह स्वयम् दूरदर्शिता से न गये पर इन्होंने दीवान नन्दचन्द व पुरोहित दयाराम को सवालाख का तम्बोल देकर भेजा। सब राजाओं से अधिक तम्बोल देखकर भीचन्द जल उठा और फ़तेहशाह की बेटी को व्याहे पीछे इस शर्त पर छोड़ चला कि जो वह गुरू महराज से मैत्री छोडदेंगे तो मैं लडकी को विदा करूंगा नहीं तो नही। फ़तेहशाह को इस धमकी के सामने शिर झुकाना पडा। गुरु महराज का तम्बोल लूट लेने व सिक्खों को एक एक करके मारडालने का प्रस्ताव निश्चय हुआ।

सिक्ख लोग वीरता से लड़कर मरे जो कुछ बचे उन्होंने

गुरु साहब को इस दुर्घटना की सूचना दी। उधर भीचन्द व इसके आधीन राजाओं ने सलाह की कि या तो गुरु गोविन्द को वध किया जाय या पकडकर औरङ्गजेब को सौंप दिया जाय जिसमें इनकी भी वही दशा हो जो धर्मवीर गुरु तेग़-बहादुर की हुई थी। इसी निश्चयके अनुसार २०-२२ पहाडी हिन्दू राजा अपनी अपनी सेना लेकर गुरु गोविन्दसिंह जी पर चढ़े, उधर श्री गुरु महाराज की ओर से भी सिहों ने लोहा लेने के लिए प्रस्थान किया। गुरु साहब की ओर प्रधान पुरुषों में ये थेः—मोहरचन्द, गुलावचन्द, साहबचन्द, हर-चन्द, कृपालुचन्द, पुरोहित दयाराम और लांगोशाह। ५०० पठानों में से जिन्हें गुरुसाहब ने वुद्ध शाह के कहने से रक्खे थे, ठीक युद्धके समय ४०० तो उत्कोच (रिशवत) लेकर शत्रुओं के पक्ष में चले गये। इनमें पांच सरदार थे जिनमें से एक एक के आधीन सौ सौ योधा थे। केवल कालेखां अपने सौ योधाओंके साथ अपने नमकका सच्चा बना रहा। ५००-६०० टुकडखोर उदासी भी समय पर भाग गये एकमात्र कृपालु-दास गुरु के साथ मरने मारने को अपने पैरों पर खडा रहा।

इन घटनाओं को देखकर राजा लोग अपनी विजय निश्चय किये हुए आनन्द के मारे फूले नहीं समाते थे। गुरु महाराज ने राम कुंवर, मेहरा और कालेखां को पॉवटे के गढ में छोडा और गुरु हरगोविन्द के समय के प्रसिद्ध वीर अपने चाचा कृपालुसिंह को दल बल साथ ले शत्रु के साथ लोहा लेनेको प्रस्थान किया। *भङ्गानी के मैदानमें शत्रु दल से मुठभेड हुई।

* यह स्थान पावटे से तीन चार कोस है।

सेनापति सांगोशाह जी अपनी सेना पीछे छोड़ आधी आगे कर अग्रयान को साथ ले मोर्चे पर जा पड़े । देखते देखते घोर सग्राम होने लगा। इतने में अनुकूल पाय कर सिक्खों के तीर शत्रुदल के कलेजों को तोड़ने लगे। इधर सिक्खों ने जल वायु अग्नि आदि तत्वोंको भी गुरु के अनुकूल देख "वाह गुरुकी फ़तेह" बोलते हुए शत्रु दल में घुसते चले गये। बात की बात में शत्रुदल के हज़ारों आदमी मारे गये और भीमचन्द को दुम दबाकर मैदान से भागना पडा।

भीमचन्द का साला रण हाथ से जाता देख ५०० सैनिक व विश्वासघाती पठानों को साथ ले सनसनाता हुआ आगे बढ़ा था कि पुरोहित दयाराम व दीवान नन्दचन्द ने बढ़कर सलामी की और मारे तीरों के शत्रुदल को आंधी के आम की तरह धरती पर बिछा दिया। इधर बुद्धूशाह को अपने दिये पठानों की विश्वास घातकता का हाल सुनकर दुख हुआ और वह स्वय गुरुकी सहायता को आया, इसके साथ दो भाई, चार पुत्र और २ हजार योधा थे। इसने भी अदूरदर्शी, बुद्धिहीन दासत्व प्रेमी राजपूतों को पकी खेती की तरह देखते देखते खूब काटा। इस तरह तीन मोर्चों पर युद्ध हुआ। अन्त में खेत धर्मवीर गुरु गोविन्दसिंह हिन्दूधर्म त्राता के हाथ रहा। शत्रु दल की बहुत सी रण सामग्री, हथियार, रसद और कोप आदि विजयी सिक्खों के हाथ लगा। इस तरह धर्म के सहारे ग्रामीण, रण कौशल विहीन सिक्खों ने २२ राजाओंकी शिक्षित सेना पर विजय पायी और पांवटे में आनन्द बधाये बजे।

यह गुरु गोविन्ददेव की पहली विजय थी। यद्यपि इसमें

अनेक वीर व प्यारे मारे गये पर सिक्खोंने तनिक भी हिम्मत नहीं हारी। सन्त कृपालुदास आदि वीरों को गुरु गोविन्ददेव ने अपनी पगड़ी प्रदान करके प्रतिष्ठित किया। भङ्गानी के समर के पीछे गुरु जी ने पांवटा छोड दिया। राजा मेदनी प्रकाश इनके सदा से भक्त थे वैसे ही बने रहे और बहुत सी भेंटें भी दीं, और कई दिन लोह गढ में ठहरे रहे। यह वह जगह है जहां बाबा बंदा ने मुगलों के साथ कई वर्ष तक लोहा लिया था।

औरङ्गजेब की राक्षसी वृत्ति और प्रजा पीड़न दिनों दिन बढा जिससे पंजाब में सर्वत्र घोर असन्तोष फैल गया। क्या हिन्दू क्या सिक्ख सभी गुरुदेव को सच्चा बादशाह और पूजनीय समझते थे इसलिये मुगलोंके अत्याचार की शिकायतें गुरु साहब के पास लाने लगे। इन अत्याचारों की कथा सुनते सुनते गुरु महाराज का कलेजा पक गया और आप मुग़लानी अत्याचारों की जड़ उखाडने की चिन्ता में लगे। आपने अपने उत्साह भरे वचनों से अपने लोगोंको मुग़लों से बदला लेने को तैयार किया। गुरु जी की शिक्षा का प्रचार समस्त उत्तर-पश्चिम भारत में दूर दूर तक फैल गया। अन्य प्रान्तों में हिन्दुओं के हृदय में वीरता और साहस का सञ्चार हुआ। आनन्दपूर में रण सामग्री बनानेके लिये कार्यालय खोला गया उत्तमोत्तम बन्दूक, तलवार, तीर, कमान, गोली बारूद बन बनकर उत्तर पश्चिम प्रान्त में भर पूर पहुंच गईं। सिक्खों और उनके सहायकों, साथियों व प्रेमियों को रण सामग्री का कोई घाटा न रह गया।

अब हारे हुये पहाड़ी राजाओं को गुरु की शक्ति का अनु-

भान होगया, इन्होंने मेल करने में ही अपनी कुशल देखी। स्वयं भीमचन्द गुरुदेव के पास क्षमा मांगने गया। गुरु साहब ने बहुत कुछ भर्त्सना और उपालम्भ के पश्चात् क्षमा कर दिया। इन्हीं दिनों सिक्खों के आनन्दगढ़, लोहगढ़, फ़तेहगढ़ और केशगढ़ के सुप्रसिद्ध दुर्ग तैयार किये गये।

सम्वत् १७४५ के ओर पास जब यह गढ बनाये गये औरंगज़ेब दक्षिण के झगड़ों में व्यस्त था पञ्जाब में राजकीय सेना बहुत कम रह गयी थी, कोष भी खाली था, पहाडी राजाओं का कर बाकी में पड़ा था। इधर औरंगज़ेब ने पञ्जाब से सैनिक व्यय के लिये एक करोड रुपया माँगा। पञ्जाब के भोगपति अर्थात् गवर्नर ने रुपया भेजने में अपना असामर्थ्य प्रगट किया, जिससे औरंगजेब क्रुद्ध गया। पञ्जाब के पहाडी राजाओं पर कर उगाहने के लिये सेना भेजी गयी मियांखाँ व अलफ़ खां इसके नेता थे। रावी के पश्चिम ओर जाकर राजाओं को खड़खड़ाना आरम्भ किया। कांगड़े के कृपालुचद ने कर देकर मुसलमानों को भीमचन्द के विरुद्ध भड़का दिया तदनुसार मुसलमानी सेना बिलासपुर की ओर चली। भीमचन्द अन्य पहाडी राजाओं को साथ लेकर मुगलों की सेना के साथ लोहा लेने को आया लेकिन ठहर न सका। अपनी पराजय होते देख भीम और मित्र राजाओं ने गुरु की शरण में सहायता मांगने के लिये दूत भेजा। गुरु महाराज इन को पहचानते थे तथापि पूर्वापर के विचार से अपने चुने हुये पांच सौ सिंह दीवानचन्द के आधिपत्य में भेजकर हारते हुये राजाओं की सहायता की। प्रभात होते होते स्वयं गुरु महाराज भी नदांव नामक स्थान में जो रणक्षेत्र था पहुंच गये।

सिक्खों की कुमक पाकर राजपुत्रों के प्राणमें फिर साहस व वीरता का संचार हुआ, दोपहर के समय रण चण्डी चेती वीर सिक्खों के तीरों से मुसलमानों के छक्के छूट गये। राजा दयालुचन्द व अलफखाँ स्वय गुरु गोविन्द के तीर से मारे गये। सूर्य अस्त होते होते मुगलों की सेना के पैर उखड़ गये और रात की अंधेरी का सहारा लेकर एक एक मुसलमान योधा नौ दो ग्यारह होगया। यह गुरु गोविन्द महाराज की दूसरी विजय थी।

विश्वास घाती व कृतघ्न भीम ने अलफ़ से गुप्त सन्धि करली थी, इस समाचार को सुनकर गुरु महाराज घृणा पूर्वक बिलासपुर से चले गये। भीम ने बहुत समझाया व भारी भारी भेटें दी पर गुरु महाराज ने यही कहा "तुम्हारे हृदय पत्थर हो गये हैं, तुम लोगो को राष्ट्र, जाति, देश व धर्म्म का कुछ भी विचार नही है ऐसे विश्वास घातियों के प्रति मेरा विश्वास व स्नेह होना असम्भव है"। गुरु जी यहां से आनन्दपुर आरहे थे कि मार्ग में भीम के घराने के राजपूतों ने ग्रामों में सिक्खों के साथ उपद्रव किया। पहले भी समय समय पर सिक्ख यात्रियों के साथ अत्याचार किया करते थे, इसलिये इनके दमन करने का उचित अवसर समझ कर सिक्खों ने बाल, वृद्ध व स्त्रियों को छोड़ सब को तलवार की धार उतारा और ग्राम लूट लिया। इन समस्त पहाड़ी स्थानों में सिक्खों का आतंक पूरा पूरा जम गया। और फिर कभी आनन्दपुर आन जाने वाले सिक्खों पर किसी राजपूत ने आंख उठाकर देखने का साहस न किया।

गुरु महाराज की सहायता से भीमचन्द आदि का विजयी

होना सुनकर लाहोर के भोगपति दिलावर खां का रुधिर क्रोध से उबलने लगा और ५-६ महीने पीछे इसने गुरु महाराज के विरुद्ध आक्रमण की आज्ञा दी। इस चढ़ाई में मुसलमानों की सेना का नायक रुस्तम खां था। आनन्दपुर के पास की पहाडी के समीप मुग़लों की सेना ने शिविर डाला उधर गुरु महाराज को यथा समय इस चढ़ाई का पता लग गया था इसलिये वीरसिंह ठीक समय पर ही इनके स्वागत के लिये भेजे गये। सिक्खों का रणनाद, 'वाह गुरु का ख़ालसा' 'वाह गुरु की फ़तेह' और तीरों की सनसनाहट से शत्रुदल में भगदर मच गयी। रुस्तम खां के हाथों के तोते उड गये, बकरी खां बन कर यह भी अपने प्राण ले भागा। बहुत से अत्याचारी मुसलमान सिक्खों की खड्ग से मारे गये और निर्दोष हिन्दुओं को सतानेवालों की थोड़ी सी संख्या घटी।

हारे हुए भगोडे मुसलमानों में जो बचे थे भाग कर लाहोर आये और भोगपति के पास सिक्खों के लोहे का वृतान्त सुनाया। इस बार भोगपति ने अपने पालक पुत्र हुसेनी के आधिपत्य में एक सेना गुरुगोविन्द के दमन करने के लिये भेजी। इस सेनामें मुसलमानों के सिवा जाति व धर्म्म द्रोही, भारत-माता के कुपूत, विश्वास घाती, दो हिन्दू भी थे। इन कुलाङ्गारों का नाम था कृपाराम व चन्दनसिंह। इनके साथ इनके ही से कुछ देश द्रोही और भी थे।

इस मुग़ल सेना ने अमरकोट आदि दो तीन स्थान लूट कई हिन्दू राजाओं को वध किया और अनेक अमानुषी कर्मों से भूमंडल के धार्मिकों के मनों में अपनी ओर से घोर घृणा

उत्पादन की। भीमचन्द व कृपालु कटोचिया ने भी कृतघ्नता का परिचय दिया और मुसलमान अत्याचारियों के साथ हुये। इन बातों का सारा समाचार हिन्दू धर्म्म संरक्षक के कानों तक पहुंचा इन्होंने आनन्दपुर को सुरक्षित करने की आज्ञा दी और दीवान नदचन्द को इस अभिनिर्याण का सेनापति किया। गुरु दरबार के कतिपय कायरों ने माता जी के पास जाकर गुरु महाराज को युद्ध से बचने का परामर्श देने की प्रार्थना की। परन्तु कर्तव्य की हांक के सामने बांका गोविन्द अपनी टेक छोड़ने वाला न था। इसने माता जी को उत्तर दिया कि "मैं मुसलमानी अत्याचारों का अन्त करने के लिये उत्पन्न हुआ हूं प्राण के भय से विदेशी अत्याचारियों के आगे सिर झुकाना पाप है। हे! माते आप कर्तव्य कर्म्म में हस्ताक्षेप न करें।"

हुसेनी आनन्दपुर आरहा था कि बीचमें गोलर के गोपाल ने भयभीत होकर कुछ कर चुका दिया और शेषके लिये समय मांगा। हुसेनी को कृतघ्न भीम और कृपालु ने ऐसा भरा कि उसने गोपाल को बन्दी कर लिया और सारा कर एकदम मागने लगा। गोपाल भाग कर राजधानी चला गया। मुग़लों की सेना ने राजधानी गोलर घेर ली और राजा से १००००, रुपया मागा व राजा को बुलाया। सामने आने पर राजा मुग़लों का चित्त पलटा देख फिर बच कर निकल गया। अब मुग़लों और गोपाल में घोर संग्राम होने लगा। दोनों ओर की बहुत सी सेना काम आयी। कृपाल व संगिता मारे गये, पर मुसलमानों की हानि सीमातीत हुई। हुसेनी भी मारा गया। गोपाल विजयी हुआ और मुसलमानों की आनन्दपुर

पर हाथ डालने की चेष्टा दूसरी बार भी विफल हुई।

तीसरीबार दिलावर भोगपति ने शऊरखां को फिर गुरु महाराज के विरुद्ध चढ़ा कर भेजा। इस बार मुग़लों सी सेना बहुत ज़्यदा थी। मार्ग में जसवाल राज्य ने मुग़लों के मार्ग में बाधा की और घोर संग्राम हुआ। इस समर में भी दो देश द्रोही जुझार सिंह व नारायण विदेशियों की ओर के मारे गये और शऊर खां, बेशऊर हो बीमारी का बहाना कर लाहोर लौट गया।

इस प्रकार बारम्बार पिटने से औरंगज़ेब के क्रोध की सीमा न रही, उसके शिर पर अत्याचार का शैतान तो सवार था ही, निर्दोष ईश्वर के पवित्र पुत्रों का रक्त पीना इसके लिये मुसल-मानी धर्म्म का मर्म बन रहा था, इस बार इसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम को गुरु महाराज के दमन करने के लिये भेजा। सम्वत् १७५१ में मुअज्ज़म बहुत बड़ी सेना ले कर लाहोर पहुंचा। इसने लाहोर से अपने प्रति पुरुषों (लफ़टंटों) को सेना ले लेकर सब राजाओं के पास कर ऊगाहने भेजा और आज्ञा दी कि जो कर देने से नकारे उसे यथेष्ट दण्ड दिया जाय। सब जगह इस बार राजकुमार मुअज्ज़म के प्रतिपुरुषों को कृतकार्य्यता हुई। जब इसका आदमी आनन्दपुर गया तो गुरु का दरबार, उनका दान पुण्य, दीनों व अनाथों की सहायता देख कर ऐसा धर्म्म मुग्ध हो गया कि जिन पहाड़ी राजाओं ने गुरु की ओर से भड़काया था या सिक्खों को सताया था उनका मुहंकाला करके गधे पर चढ़ा नगर घुमाया।

सिक्खों के गुरु के प्रति मुसलमान अधिनाम की यह

असाधारण भक्ति देख कर पहाड़ी सरदार (हिन्दू नामधारी राव राजे) ईर्ष्या द्वेष की अग्नि से झुलस गये। और औसर पाकर बिलासपुरी भीम के पुत्र अजमेरा के नेतृत्व में अपना एक प्रतिनिधि दल गुरु गोविन्द की शिकायत करने भेजा। इस दलने सच्ची व झूठी कोई बात ऐसी नहीं उठा रखी जिस से गुरु गोविन्द के विरुद्ध मुग़लों में विष वल्ली नउग सकती थी–गुरु महाराज हथियार बनाते हैं, सेना बढाते हैं सहस्त्रों डाकूओं व राजद्रोहियों को शरण में रखते हैं, धन कुबेर हैं इत्यादि इत्यादि।

लाहोर का भोगपति गुरुदेव का शत्रु तो थाही, उसे उभाड़ना कौनसी बडी बात थी, तुरन्त बदलगया और नादोंव व गोलर की पुरानी बातों का बहाना लेकर अपने पुत्र को बहुतसी सेना के साथ गुरु महाराज के दमन करने के लिये भेजदिया। इस सेनापति को आज्ञा दी गयी थी गुरुगोविन्द से १००००) रुपया दण्ड मांगा जाय जो वह देने से इनकारकरें को यथेष्ट दण्ड दिया जाय। गुरुगोविन्द जी इतनी जल्दी भयभीत होकर रुपया कब गिनदेनेवाले थे, सिक्खों व मुग़लों का घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि सिक्ख बड़ी वीरता से लडे पर आक्रमणकारी आनन्दपुर में घुस पडे अत्याचारी और लुटेरे थे ही जो कुछ हाथ पड़ा ले देकर ५ कोस के अन्तर पर एक गांव में जा ठहरे। मुसलमान विजय से उन्मत्तहो मद्य पीपी कर पैशाची लीला कर रहे थे कि सिक्खों नेजा घेरा और अपने धन व जन का लेखा करके लूट का कई गुणा व्याज बढ़ोतर सहित सब चुका लाये। उन्मत्त धर्म भ्रष्ट मद्यप आपस में भी बहुत कुछ कट मरे जो बचे

वह छूट भागे। इतिहासकार कहते हैं कि इस युद्ध में सिक्खों को रण सामग्री बहुतही ज्यादा हाथ पड़ी।

इसके अनन्तर फिर गुरुजी के ऊपर चढ़ाई करने की तय्यारियां होने लगीं, लेकिन भाई नन्दराय व हकीमराय के दबाव डालने से मुअज्ज़म ने चढ़ाई रोकदी। यह दोनों सज्जन गुरुगोविन्द के शिष्य थे। मुअज्ज़म ने शक्ति का समय के लिये ठीक रखने के विचार से परामर्श को और भी मान लिया नहीं कदाचित न भी मानता। गुरु और मुअज्ज़म में मित्रता स्थापित होगयी और गुरु ने काम पड़ने पर मुअज्ज़म को सहायता देने का बचनदिया। इस सन्धि और मैत्री से एकबार फिर पंजाब में शान्ति फैली और गुरुगोविन्द देव अपने जनों के आत्मिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक सुधारों में लगे।

इस बीच में रंघडों ने फिर सिक्खों को विशेषतः यात्रियों को इधर उधर अकेले दुकेले लूटना आरम्भ करदिया। यह रंघड हिन्दू से मुसलमान होगये थे परन्तु बड़े प्रचण्ड लड़ाकू और उत्पाती थे इनके हिन्दू सजातीय भी प्रायः यही काम करते थे। सिक्खों ने इनको दमन करना चाहा, कुछ काल तक यह लोग लड़े अन्त में हार के भाग गये, सिक्खों ने इनके ग्रामों को लूटकर जिस जिस यात्री की जितनी हानि हुई थी पूरा करदी। इस प्रकार पञ्जाब में सिक्खों की जड़ गुरु गोविन्द के हाथों इतनी गहरी गड़ गयी कि आज तक हम उन्हें वीरता का रूप मानते आये हैं।

——:0:——

अध्याय छठा

गुरु गोविन्द के प्रताप का दोपहर

अदूरदर्शी पहाड़ी लोग सिक्खों को लगातार अवसरपाकर कष्ट देतेही रहे, आज भी हम देखते हैं कि प्राय. हमारे हिन्दू उदार चेता सुधारक दल को नास्तिक आदि उपाधियाँ देते हैं और कभी कभी आपही घृणित व्यवहार करते हुये भी शंका नहीं करते। पहाडी राजाओं ने देश के सुधार व उद्धार का बीडा उठाये हुये सिक्खों को सताने म कुछ भी कसर नहीं की यहां तक कि कई वार विदेशी विधर्मी विजाती मुग़लों को भडकाकर अपने साथ लिया और सिक्ख दल को नष्ट करने की चेष्टा की।

जब औरगजेब दक्षिण की ओर उलझ रहा था पहाडी राजाओं ने सिक्खा की बडी निन्दा व शिकायत की जिसपर हिन्दू धर्म द्रोही औरङ्गजेब ने एक तुर्की सेनापति को पैवन्द खां के साथ सिक्खों को दमन करने को भेजा। लेकिन गुरु कुमार अजीत सिह ने अपने लोहे की कठोरता का वह प्रमाणदिया कि अदूरदर्शी पहाडी राजपुत्र और उनके सहायक दुम दबा भागे।

इसके पीछे पहाडियों ने गुज्जरों की शरण ली और उनकी सहायता मांग सिक्खों को दमन करने को फिर उद्यत हुए इन्होंने सब ओर से सिक्खों को घेरलिया एक दिन भर संग्राम हुआ गुर्जर सरदार और अजमतुल्ला मारा गया और पहाड़ी राजपुत्रों के औसान ढीले पड़े। किन्तु रात में

इन लोगों ने फिर समिति की और यह प्रस्ताव पास किया कि आनन्दपुर को सब ओर से निस्सम्बन्ध करदो, सिक्खों को अहार वस्त्र आदि न पहुचेगा तो स्वयमही मर जायगे। अथवा हमारी शरण आयेंगे। गुरु महाराज को इस अभिसन्धि का पता लगगया। प्रभात में राजपूत आनन्दपूर के चारों ओर अपने शिविर स्थापित कर रहे थे कि सिक्खों ने पहुंच कर अपने विषम नाराचों (वाणों) से पिशाच हृदयों को वेधना आरम्भ किया। कायर, देशद्रोही, और दगावाजों का जी कितना; पेट पालने के लिए देशहित के विरुद्ध विजातियों विधर्मियों की सहायता करनेवाला में वीरता कहां' धर्माधर्म का ज्ञान न रखनेवालों में शौर्य कैसा. सिक्खों के वाणों के मारे राजपुत्रों के प्राणों के लाले पडगये एक एक पहाड़ी भागकर खरगोशों की तरह झाडियों में जा छिपा। कुंवर अजीत ने पराजितों का पीछा करके बहुतों के तप्त रक्त से मात भेदनी को सन्तुष्ट किया।

परन्तु कहावत है और सच है कि "जाहि नाथ दारुण दुख देहीं, ताकी मति पहले हरलेही" राजाओं को फिर चेत न हुआ और रात में और एक नया स्वांग रचा। किसी केसरी ने उन्मत्त हाथी लेजाकर गुरु महाराज के रौंदने का वीडा उठाया। इस प्रसिद्ध डींगिये की डींग का पता सच्चे बादशाह तक पहुंचा। वीर सिक्ख मातृभूमि के उपासक ऐसे लडक खेलों को क्या समझते थे। ज्योंही दूसरे दिन पहले पहर केसरी हाथी लेकर आया कि सच्चा सिक्ख केसरी विचित्र सिंह ने घोड़े पर चढ़कर अगवानी की विचित्र सिंह के भाले ने काले पहाड़ से रक्त के नाले चलादिये।

हाथी चिग्घाडकर भागा और राजपूत दल के अनेक लोगों को साथ ले स्वर्ग की ओर पधार गया। इधर उदयसिंह ने राजा केसरी को ऐसा हाथ बताया कि वह मही चूमने आया। इतनेमें वीर उदयने रुण्ड छोड मुण्ड ले गुरु गोविन्द के चरणों पर जा धरा। सिक्खोंके दल में आनन्द ध्वनि होने लगी। इस हार से राजपुत्रों का कलेजा क्रोध से और भी दहक उठा। इस वार प्राणों की आशा छोड क्रोधान्ध हो राजा लोग ससैन्य सिक्खो में एक दम टूट पड़े। एक महीने तक लडाई रही, यद्यपि दो तीन वार सिक्खों के पैर पीछे पडे पर अन्त में रणभूमि में अड़े खड़े रहे। सिक्खों के हारने का कोई चिन्ह न देखा तो धूर्त पुरोहित राजपामा को भेजकर राजाओं ने गुरु महाराज से यह कहला भेजा कि 'हम तुम्हारी गाय हैं' हमारी प्रतिष्ठा के रखने के लिये एक दिन को आनन्दपुर छोड दो तो हमारी बात रहजाय। २४ घण्टों के पीछे फिर आप आनन्दपूर के पूर्ववत् अधिकारी हों। गुरु महाराजने यह बात मान ली। नीच राजाओं ने आनन्दपुर पहुचकर सिक्खों को काटना आरम्भ करदिया। यह देख सिक्खों ने फिर पैतरा फेरा और विश्वास घातियों को प्राण लेकर भागना पड़ा। कहते हैं गुरु देव के निज अस्त्रों से ही अधिकांश विश्वासघाती शत्रु दल का नाश हुआ था।

यहां से भागकर राजपुत्रों ने सरहिन्द के भोगपति की सहायता मांगी और वज़ीरचन्द भारी कटक लेकर सिक्खों से लोहा लेने आया। सिक्ख बहुत दिनों से लड रहे थे। सिक्खो की स ख्या भी पाठक समझ सकते हैं पौराणिक हिन्दुओं से कहां कम थी अन्त में इन्हें रण छोड़ कर वासली

में जा रहना पड़ा।

कुछ ही काल पश्चात् राज धर्म पाल से विदा हो कर गुरु महाराज ने आनन्दपुर वापिस लेने की तैयारी की। यद्यपि गुरु महाराज ने आनन्दपुर ले लिया परन्तु स्थान बिलकुल ऊजड पाया गढ़ के उत्तम उत्तम मकान मुसलमानों व देश द्रोहियों ने गिरा दिये थे। अदूरदर्शी राजाओं को विदेशीय व विजातिओं और विधर्मीकी सहायतासे देशभक्त गुरुगोविन्दके इतने कष्ट पाने से कुछ सन्तोष होगया था साथ ही गुरु के लोहे को भी जानते व मानते थे। इसलिये कुछ काल तक शान्ति रही। एकबार इन राजाओं ने गुरु महाराज को निमन्त्रण भेजा। गुरु महाराज तदनुसार प्रसन्नता पूर्वक पधारे। सकेत के पास रावल सर में एकादशी के दिन दरबार हुआ। गुरु महाराज ने राजाओं को उनकी दीन हीन धार्मिक,सामाजिक व राजनैतिक अधःपतनका ज्ञान करानेके लिये व्याख्यान दिया।

इस व्याख्यान का यह प्रभाव,हुआ कि अधिकांश मे तत्काल सिक्ख धर्म स्वीकार करना चाहा पर स्वार्थी पुरोहितों ने उन्हें रोक कर भारत के अभ्युदय की आशा पर अपने पापी पेट के लिये पानी फेर दिया। यही राजे जो भारत के सुपूत गोबिन्द के विरुद्ध विजातियों के साथ हो कर लड़े जो एक लड़ में आवद्ध हो जाते तो भारत को चिरदासत्व की चद्दर न ओढ़ने पड़ती।

गुरु गोविन्द उदार, बुद्धिमान दूरदर्शी देश भक्त विद्वान् रागी,पर्यटन प्रेमी और वीर थे। जो गुरुगोविन्ददेव का जीवन आंख खोलकर पढ़ेगा और मनन करेगा तो उसे मानना पड़ेगा

कि हमने उपर्युक्त सारे विशेषण गुरु गोविन्दजी के वास्ते बहुत समझ बूझकर रखे हैं। सम्वत १७५९ में ग्रहणके अवसर पर गुरु साहब थानेश्वर पधारे थे, इधर पहाड़ी राजाओं ने फिर उनके विरूद्ध षड़यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। आपको वध करने के लिये प्रपञ्च किया गया। मुसलमानों की सेना लाहोर की ओर जा रही थी, इनको पहाड़ी राजाओं ने अपने षडयन्त्र में सहायता देने के लिये रोक लिया। गुरु देव के लौटने पर चम्बकोर में आक्रमण किया गया। सिक्ख इतनी बडी वीरता से लडे कि मुसलमान सेनाध्यक्ष सय्यद बे-साथ होकर गुरु की शरण चला गया। युग फूटा देख अलफ़ खां व विश्वास घाती राजा गण भी भाग निकले।

पाठक स्वयम समझ सकते हैं कि गुरु गोविन्द अपनी सिक्ख सम्प्रदाय और अपने भक्तों के समुदाय को साथ लिये हुए किस प्रकार हिन्दू धर्म्म, हिन्दू स्वत्वों और हिन्दू नाम की रक्षा के लिये हथेली में प्राण लिये फिरते थे और इसके प्रत्युपकार में हिन्दू लोग उनके साथ कैसा वर्ताव करते थे। यही दुर्गुण हिन्दुओं में है जिसने इन्हें हज़ारों वर्ष की गुलामी के पीछे भी अपने पैरों खड़े होने की शक्ति नही होने दी, न होने देता है। इस बात के प्रमाण में कि गुरू गोविन्द सिंह, नहीं, नहीं सारी सिक्ख पादशाहियां हिन्दू धर्म्म और हिन्दू नाम,और स्वत्वों के संरक्षक थे,हमें सिक्ख इतिहास में अनेकों उदाहरण मिलते हैं। यहां हम पाठकों को एक छोटा सा उदा-हरण देकर निवेदन करेंगे कि वह सिक्ख इतिहास को विचार पूर्वक मनन करें।

उदाहरण—एक दिन एक ब्राह्मण (हिन्दू, क्योंकि सिक्ख

धर्म्म में यद्यपि हिन्दू धर्म्म ही का एक सशोधित रूप है, इस प्रकार के भेद नहीं है) ने आकर गुरु गोविन्द के सामने निवेदन किया कि 'महाराज ! मैं नया विवाह करके अपनी पत्नी को घर ले जा रहा था कि मार्ग में वासी के पठान सरदार ने बलात् मेरी धर्म्मपत्नी छीन कर अपने घर में रख ली। मैंने उसकी बड़ी विनती की पर वह न पसीजा। और पास के सब सरदारों व बड़े आदमियों से भी अपनी विपद् का हाल कहा पर किसी का साहस न हुआ कि मुँह खोल कर उससे यह भी पूछे कि तूने ऐसा दुष्ट व्यवहार क्यों किया। मुझे आशा है कि आप मेरा अभियोग सुनेंगे क्योंकि दीनों के शरण और हिन्दुओं के संरक्षक है।' यह सुन कर वीर गोविन्द की भुजाएं फड़क उठीं, क्रोध से नेत्र लाल होगये और होंट फड़कने लगे। अपने प्राण प्रिय पुत्र कुमार अजीत सिंह को बुलाकर आज्ञा दी—'वत्स ! निरपराधिनी अबला का कष्ट दूर करो ; दुष्ट पठान को हाथ पैर बांध कर मेरे सामने लाओ।'

जिन ब्राह्मणों ने राजाओं, राजपुत्रों और हिन्दू प्रजा को भड़का कर गुरु गोविन्द के वध करने को एक वार नहीं बीस वार उद्योग किया उसी ब्राह्मण जाति की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये, उसी ब्राह्मण जाति के स्वत्वों को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिये वीर गोविन्दसिंह ने अपने प्राण से अधिक प्यारे पुत्र को मुसलमानी राज्य में पठान सरदार के साथ लोहा लेने भेजा। कहाँ हमारे देश के वञ्चक जो थोडे से रुपये के लिये विजाती विदेशी और विधर्म्मियों का साथ देने को तत्पर अपनी आर्थिक आयको बचाने के लिये सुधारकों को बुरा कहने

व गाली देने के लिये कटिबद्ध, कहां देशभक्त, राष्ट्रीय धर्म्म के मर्म्म का ज्ञाता, राष्ट्र निर्म्माता गोविन्द सिंह ? हा गोविन्द गोविन्द, गोविन्द आप कहां हैं ? आपकी आत्मा आपके लोग आपके शिष्य क्या नहीं कर सकते । हे गोविन्द, हे शिव क्या आप के से पुरुष रत्नों से भारत निर्बीज है ? हे परमात्मन ! सुधारकों व शुभेच्छुकों की कब तक यह दुर्दशा होगी ? हे प्रभो आप ही अपने बच्चों को पवित्र अन्तरात्मा व शुद्धि बुद्धि प्रदान कर सकते हैं !

प्रिय पाठक ! वीर अजीत गोविन्दसिंह का सिंह सिंह सी गरज कर उठा, और दुराचारी गीदड को धर दबाया । प्रभात में सूर्य्य भी नहीं निकलने पाया, लोग अपने बिछौने पर ही पडे थे कि अजीतसिंह थोड़े से सिक्खों के साथ उसकी छाती पर जा चढा । रात में गुरुदेव के सामने अभियोग उपस्थित हुआ, जिन पापात्माओं ने दुराचारी का पक्ष का लिया था उनको प्राण दण्ड दे, जब्बार को बांध कर सिंहशावक अजीतने गुरू के सामने ला खडा किया । गुरू की आज्ञा से इस नर पिशाच को प्राण दण्ड दिया गया और ब्राह्मण को उसकी पत्नी लौटा मिली ।

सिक्ख लोग यद्यपि इतने दयालु थे परन्तु ऐसे कायर न थे जो अत्याचारियों, देश द्रोहियों और विश्वासघातियों को क्षमा कर दें । इनके इस प्रकार के न्याय व कठोर दण्ड के भय से सहसा कोई किसी निर्बल पर अत्याचार नहीं कर सकता था फिर यह कैसे सम्भव था कि यह लोग उन लोगों की दुष्टता को भूल जाते जिन्होंने छिप कर थानेश्वर से लौटते हुए गुरु गोविन्द सिंह के प्राण हरने को मार्ग में घात

लगा कर बैठे थे। सिक्खों ने कई बार इन विश्वास घातियों से बदला लिया।

जब कायर पहाड़ी राजाओं को न तो यह सामर्थ्य हुई कि गुरू महाराज के साथ होकर देश सेवा करें, न यह साहस हुआ कि अपना अधर्म्म का पक्ष खड्ग से समर्थन करें, तब इन्होंने एक सभा की और मुगल बादशाह को प्रार्थना पत्र भेजा। इस प्रार्थना का सार यह थाः—

'गुरु गोविन्द सिंह ने राजविद्रोह की ध्वजा उठाई है देहली पर आक्रमण करने का प्रवन्ध कर रहे हैं। सेना अस्त्रशस्त्र सहित तयार हो चुकी है। आपने अपने पिता का बदला लेना ठान लिया है। आप सावधान होजांय और हमारे प्राण बचायें।'

हमने एक बहुत बडे पत्र का सार मात्र दिया है। फ़ारसी की लम्बी चौड़ी चिट्ठी को अक्षरसः उद्धरण व्यर्थ है।

औरगज़ेब की क्रूरता और अत्याचार से हिन्दू तो हिन्दू, धर्म का वास्तविक ज्ञान रखने वाले मुसलमान भी रुष्ट हो रहे थे। मुग़ल साम्राज्य के विनाशक औरङ्गजेब को अपने हाथ पैरों व वस्त्रों का भी विश्वास न रहा, चारों ओर शंका ही शका का कारण दीखता था, मित्र भी शत्रु प्रतीत होते थे। इधर दक्षिण उधर पञ्जाब दाहने बायें शूल से चुभते थे। दिन को भूक न रातको नींद औरङ्ग़ज़ेब को करवट बदलते ही समय जाता था, इतने में यह भयानक पत्र मिला।

औरज़ेब ने सरहिन्द व लाहोर के भोगपतियों को आज्ञा दी कि आनन्दपूर को घेर कर विनष्ट कर डालो और गुरुदेव को बन्दी करके दरबार में भेज दो। निज राजकीय छाप और

हस्ताक्षर से औरंगज़ेब ने यह आज्ञापत्र भेजा था, इसमें यह भी अन्त में था कि इन प्रान्तों में काफ़िरों का बल न बढ़ने पावे इस ओर भोगपतियों को पूरा ध्यान रखना चाहिये। गुरुदेव के ऊपर मुहम्मदी जिहाद का फ़तवा (जैसा मसीह १५ वीं शताब्दि में ईसाई करते थे) निकला था कि एक कोडी प्रसिद्ध मुसलमान योधा, मालरकोटला, कसूर, विजवाडा, जालन्धर, झंग, मुलतान भावलपूर इत्यादि के २ भोगपति उपभोगपति, देशमुख, छोटे मोटे शासक सबने अपनी अपनी सेनाएं सजायीं और गुरु गोविन्दसिंह के दमन करने के लिये पूरी शक्ति से प्रस्थान किया। इसमें दुख और भारत के लिए बडी लज्जाका विषय यह था कि इस जहाद में अनेक हिन्दू, पहाडी राजे और राजपुत्र भी सम्मिलित थे। राजपुत्र भारत में अपने इस स्वभाव के लिये फिर प्रसिद्ध हो चुके हैं और रहेंगे। राजपुत्रों के इस द्रोह का विशेष कारण सिक्खों की धार्म्मिक स्वतन्त्रता, स्वाभाविक स्वाधीनता और ऐसे नामों व उपाधियों का धारण करना था जिसे राजपुत्र अपनी वैसी ही जागीर समझते थे जैसी पुरोहित मण्डल धर्म्म ग्रन्थों को समझता था।

यह समाचार चारों ओर सूर्य के प्रकाश या रात्रि के अन्धकार की भांति फैल गया, सब तरफ़ से सिक्ख लोग भी दल वद्ध होकर आनन्दपुर में एकत्र होने लगे। गुरु के पास भी समर आरम्भ होने के पहले पहले अनुमान ११५०० योधा होगये थे किन्तु शत्रुदल की गणना एक लाख के ऊपर पहुंच गई थी अन्तर यही था गुरु देव की सेना एक भाषाभाषी, एक धर्मावलम्बी, एक व्रत से व्रती एक प्रण से प्रणित

थी, मुगलों की सेना का वही हाल था कि कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनवा जोड़ा।

जब विजातीय सेना दृष्टि पडने लगी तो सिक्ख दल से राजकुमार अजीतसिंह ने बढ़ कर सामना किया। आपके साथ सय्यदबेग व मामू नाम के दो तुर्क सरदार और थोड़ी सी सिक्ख (खालसा) सेना थी (घोर संग्राम हुआ) इधर दोनों तरफ़ सरदार काम आए और उधर कई राजपूत राजा और सैकड़ों मुसलमान ऊर्द्धतम कर्मचारी मारे गये। इस अग्रयानों के संघर्षण में मुसलमानी सेना की हानि बहुत ही अधिक हुई। यद्यपि सिक्ख भी संख्या के देखते बहुत-काम आये परन्तु विजय के कारण इनके मन बढ़ गये। सच है मन की जीत भी बडीजीत है। अब तो मुसलमान सिक्खों के समीप आकर लड़ने से मूंह चुराने लगे। पहले भी सिक्खों का लोहा देख चुके थे इसलिये इस वार इनका हाथ से हाथ मिला कर लड़ने से साहस टूट चुका था। मुसलमानों ने आनन्दपुर को घेर कर डेरा डाल दिया और यह समझे जब बाह्य जगत से इसका संसर्ग न रहेगा तो भूक व प्यास के कारण सिक्ख लोग आपही विना मारे मरजायगे।

लेकिन सिक्ख लोग सच्चे वीर थे, पैसे के लिये नहीं किन्तु सिद्धान्त पर अड़े लड़ते थे, इनका साहस वाहरी अत्याचारों के घटाने के बदले दिनोंदिन बढ़ता जाता था। एक मुट्ठी सिक्ख कई मास तक एक लाख से अधिक मुग़ल सेना से लडते रहे जब जब इन्हें वार्ता (रसद) की आवश्यकता होती, क्या दिन, क्या रात सिंहलोग गरजते हुए अपनी गुफ़ासे निकलते और मुसलमानों के सञ्चित सामान उठा ले जाते और आनन्दपुर

में बैठे आनन्द मनाते। पर यह बात सदा नहीं चल सकती थी और न इस तरह पूरा ही पड़ सकता था, अन्त में सिक्खों ने एकत्र होकर मुसलमानों पर जोर का आक्रमण किया। इस आक्रमण से यद्यपि मुसलमानी सेना की बहुत बड़ी हानि हुई किन्तु इतनी हानि नहीं हुई कि परिवेष्टन छोड कर भाग जाती। इसके पीछे सिक्खों ने फिर तीन बार भयानक आक्रमण किया जिससे मुसलमानी सेना की संख्या लगातार घटने लगी।

बारम्बार सिक्खों के आक्रमण से दुखी हो, अपनी वीरता पर धब्बा लगता देख, उधर बादशाह की ओर से यह भर्त्सना पर भर्त्सना सुन कर 'कि जो वीर एक मुट्ठी भिक्षुक साधुओं को नहीं वश कर सके वह अपने को वीर कहाने के योग्य कैसे समझ सकते हैं' मुसलमान सेना ने जी कडा किया और दो बार नगर के भीतर जाने की चेष्टा की। दोनों बार सिक्खों को तलवार ने न केवल इन्हें पीछे हटा दिया किन्तु इनके बहुत से योधाओं को भी वहां ही खेत रखा। इस प्रकार से मुसलमानी वीरता चँधोल गई, हार कर प्रधान सेनाध्यक्ष ने घेरा उठा लेने की आज्ञा देने का दृढ विचार किया। विश्वासघाती पहाडी राजपूत राजाओं ने औसर हाथ से जाता देख, एक बार फिर अपने मातृघाती होने का परिचय देना मन में ठान लिया राजा लोग यह जानते थे सिक्ख लोग अन्न आदि के कष्ट से पीडित हैं, इसलिये बादशाही सेनापति की ओर से दूत भेजवाकर सिक्खों को वचन दिया कि यदि सिक्ख लोग आनन्दपूर छोड कर चलेजायें तो बादशाही सेना उनको मार्ग देने को तय्यार है। कुछ भतऔवें सिक्खों ने इस औसर को प्राण

बचाने के लिए धन्य समझा, पर गुरू ने आज्ञा नदी। तब इन्होंने माता जी को जाकर कहा। स्त्रियां तो स्त्रियांही हैं, दया इन में अधिक स्वभाव सेही होती है, माता जी भूके प्यासे दश पाच सिक्खों के रोने से पिघल गयीं। लेकिन वास्तविक स्थिति को गुरु माहराज अच्छी तरह जानते थे इसलिए माता जीकी बात न मानी। इस बात पर माता क्रुद्ध होकर यह कहती हुई चलीं गयीं कि 'यदि तू ऐसा हठ करेगा तो तेरे साथ एक भी सिक्ख नठहरेगा'।

गुरुजी को इस बात से दुःख हुआ क्योंकि वह जानते थे कि विजय हमारी है; जो यह ईश्वर के लाल दश पांच दिन और कष्ट सहन करलें तो मुसलमानों को स्वयम् पूंछ मोड़कर भागना पडे। लेकिन माता जी के वचनों का कुछ भीतरी अर्थ भी था इसलिए आपने सब सिक्खों को बुलाकर कहदिया कि जो सिक्ख प्राण बचाकर जाना चाहे बेशक जाय और इस 'बेदावे' पर हस्ताक्षर करदे। बहुतों ने गुरु को त्यागना; गुरु शिष्य सम्बन्ध का तोड़ना स्वीकार करलिया किन्तु बहुतेरे सच्चे सिंह गुरु के साथ पैर अडाये जमे रहे। इन वीर सिंह पुत्रों का कथन था कि गुरु के साथ मरना जीने से कहीं अधिक मूल्यवान है। कई सिक्खों के दबाने पर माता गूजरी ने उन्हें स्वयम् आज्ञा देदी कि तुम लोग जाओ और गुरुगोविन्द की स्त्री और पुत्रों को भी साथ लेजाकर सुरक्षित स्थान में रक्खो। गुरुजी ने अपनी आज्ञा के विरुद्ध होते और यह बात प्रत्यक्ष जानते हुए कि इस का परिणाम अनिष्ट के सिवा भला नहीं हो सकता, आपने केवल इतनाही कहा—" जो मार्ग अवलम्बन किया जाता है यह आत्मघात का मार्ग

है और इससे दुख के सिवा सुख नहीं मिल सकता, जो तुम लोग दो तीन दिन और कष्ट सहलेते तो सहज में कष्ट का अन्त प्रतिष्ठा और पूर्ण सुख के साथ होता।"

गुरु की सम्मति सिक्खों व माता गूजरी ने पहिले ही विपरीत समझली थी, सिक्ख लोग जाने को तय्यार होने लगे। जल्दी जल्दी महिलाओं और बच्चों की भी तय्यारियां की गईं, जो कुछ धन दौलत इनसे लेता बना लेकर महिलाएं रथ पर सवार हुईं। गुरु के लाड़ले और अन्य विश्वासपात्र योधाओं में से कुछ तो रथ के आगे हुए और कुछ पीछे चले, दाहिने बायें स्वयम् गुरुदेव और उनके सहकारी महारथी लोग हुए। इस तरह पर महिलाओं के रथ की रक्षा करते हुए सिक्ख दल ने व्यवस्था व विन्यास के साथ प्रस्थान किया। ज्योंही यह लोग सब के सब गढ के बाहर निकल चुके, देशद्रोही पहाडी राजपूत राजाओं के बहकाये दुष्टाचारी भ्रष्ट प्रतिज्ञ मुसलमान सेनाध्यक्षों ने सिक्खों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी और मुसलमानी सेना ने वार करना आरम्भकरदिया। सिक्ख लोगों ने वीरता से मुसलमानी तीरों व तलवारों का यथेष्ट उत्तर देना अपना धर्म्म समझा। राजकुमार अजीत सिंह ने आगे बढकर मोर्चालिया जिससे कुछ समय तक मुसलमानी सेना आगे न बढ़ सकी और गुरु गोविन्दसिंहदेव स्त्री बच्चों की रक्षा करते हुए कई कोस निकलगये लेकिन मुसलमानों के लक्खी दल के सामने एक मुट्ठी भर सिक्ख कब तक ठहर सकते थे, नयी कुमक आई और सिक्खों को रणभूमि छोड़ने को बाध्य होना पड़ा। कुछ सिक्ख वहीं मारे गये, कुछ घायल हुए; थोड़े से इधर उधर

भाग गये, पर मार्ग में पहाडी राजपूतों ने उनका काम तमाम करदिया। गुरु गोविन्ददेव और कुछ गिनती के साथी चाम्ब-कोर की ओर चले। मार्ग में सिरसा नदी चढी हुई थी सिक्ख दल नदी पार न करने पाया था कि मुसलमानी दल आन पहुंचा। युद्ध करना देश काल के विरुद्ध देख गुरुगोविन्दसिंह जी ने अपने दो किशोर पुत्र अजीत और जुझार के साथ नदी में घोड़े डालदिये और निर्विघ्न पार निकलगये। इनकी दोनों स्त्रियां पुरुष-परिच्छद में दिल्ली की ओर प्रस्थान करगयीं और एक सिख के यहां जिसका नाम जवाहरसिंह था शरण ली। माता गूजरी ने दो छोटे सिंह शावक जोरावर व फ़ते-सिंह सहित एक गुफ़ा में छिपकर प्राण रक्षा की।

माता गूजरी के साथ पुरोहित जाति का एक व्यक्ति गंगा राम बम्हन था। यह गुरु साहब के घराने का पुराना लवण भोजी के कारण विश्वास पात्र समझा जाता था, इसने माता गूजरी और दोनों बालकों को अपने ग्राम खेरी मे ले जाकर अपने घर में शरण दी। माता जी ने सारा सामान जिसमें बहुत सा धन, वस्त्र और बहुमूल्य रत्न व आभूषण थे सुरक्षित रखने को गंगा को सौंप दिया, क्योंकि सिवा इसके और क्या हो सकता था। गङ्गाराम ने धन के लोभ में आ सारा धन हटा रक्खा और प्रभात होते ही चोरी का हल्ला मचाने लगा। माता गूजरी समस्त रात सोयी न थी, कुछ तो वृद्धावस्था में निन्द्रा स्वभावतः कम होजाती है, कुछ इन्हें अपने बच्चों व धन की चिन्ता थी. प्रतिक्षण इनके कान शत्रुदल के आने की आहट लेने में लगे रहे थे। इस दशा में गङ्गा का हाल देखकर माता से रहा न गया और उन्होंने सरल भाव से कहा—'देखो बेटा

गङ्गा तुम हमारे घरके पुराने जनों में से हो, मैं सारी रात नहीं सोयी, यहां रात में चोर चकोर कोई भी आता तो अवश्य मुझे मालूम होता. हां तुम्हीं रात में चार पांच बार आये थे। इस अवस्था में हल्ला मचाना व्यर्थ है, कहीं कोई मुसलमान सुन लेगा तो हमारे बच्चों के प्राण जायंगे लाभ कुछ न होगा। मुझे धन की परवाह नहीं है तुम खाओ और खुश रहो। मुग़लों के हाथ में जाने से इस धन का तुम्हारे पास रहना हजार बार अच्छा है। तुम अपने हो. दूसरे नहीं हो। चुप हो जाओ भीड़ मत इकट्ठा करो, देखो कहना मानो कोई हमें पह-चान लेगा तो हमारे बच्चे मारे जायँगे।"

इन बातों को सुन कर परान्न भोजी पुरोहित पुत्र को दया के बदले और क्रूरता सूझी। अपनी झूठी धर्मज्ञता दिखाने के लिये अथवा इसलिये कि माता गूजरी व बच्चे मारे जायँ तो मेरी दुष्टता छिपी रहे, इसने माता जी को उत्तर दिया–'वाह जी मैंने तुम लोगों के प्राण बचाए', घर में शरण दी और सेवा की उसका तुमने यह बदला दिया कि मुझे चोरी लगायी' और जाकर मुसलमान अधिकारियों के हाथमें इन्हें सौंप आया।

इन अधिकारियों ने इन बच्चों को वृद्धा पितामही सहित सरहिन्द के भोगपति वजीरखां के पास भेज दिया। इस दुष्ट निर्दयी ने मुसलमानी धर्म शिक्षा के प्रताप से इन पांच छः वर्ष के बालकों को अपनी आज्ञा यों सुनायी–'देखो काफिरो या तो तुम कलमा पढ़कर सच्चे धर्म इसलाम पर ईमान लाओ नहीं तो प्राणदण्ड स्वीकार करो'। इन सिंह शावकों ने उत्तर दिया हमें मृत्यु ही अधिक प्रिय है।'

वज़ीर ने इनको अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट दिये व सताया अन्त में आज्ञा दे दी कि इनको जीता ही भीत में चुन दो इस राक्षसी आज्ञा का पालन आज्ञा देनेवाले के सधर्म्मी सच्चे धर्म वाले अर्थात् मुसलमान लोग हर्ष से करने लगे। जब भीत इन धर्म वालियों के कान तक पहुंच गयी तब फिर मुहम्मदी धर्मावलम्बी वज़ीरखाँ, सरहिन्द के भोगपति ने कहा-"देखो अब भी कलमा पढ़कर इसलाम क़बूल करलो जिस में तुम्हारे प्राण बच जायं। कहना मान लो मैं तुम्हें अच्छी सलाह देता हूं। मुसलमान धर्म सच्चा है

गुरु पुत्र राजकुमार जवाहर सिंह—"यह नहीं हो सकता। हम गुरु गोविन्द सिंह क पुत्र हैं। हमें मौत का क्या डर दिखाता है?" हिन्दू जाति के लिये-लघुभ्राता फतेसिंह —हम अवश्य प्राण हवन करेंगे, इसी रक्त के द्वारा आर्य्यावर्त के साथ जो अन्याय व अत्याचार हुए हैं उनका बदला लिया जायगा। हे दुष्ट! तू अपनी रक्त की प्यास बुझा ले देखता क्या है।"

इन बालकों की बातों में वह सचाई थी, वह वीरता थी, वह देश भक्ति थी वह ईश्वर श्रद्धा थी, कि कठोर होते हुये भी वजीरखां सदृश कठोर हृदय मुसलमान का भी एक बार चुप होकर बालकों के मुंह की ओर देखता निस्तब्ध रह गया। इतने में मालियर कोटले के हाकिम ने वजीर को समझा कर कहा कि इन बच्चों को वध करना बड़ी निर्दयता है और संसार में अपकीर्ति का हेतु होगा; आप इन्हें कम से कम वध न करें। लेकिन सभी धनवानों, राजाओं और अधिकारियों के दरबार में निकम्मे, हरामख़ोर, खुशामदी, देश-

द्रोही, जाति वञ्चक और देश व देशियों के प्रति विश्वास घात करनेवाले होते हैं। इटाली में महात्मा मन्सीनी के साथ भी इसी प्रकार के लोगों ने अपनी दुरात्मा का परिचय दिया था केवूर ने ही जो एक उच्च स्थानस्थ राज्य कर्म्मचारी था इस महात्मा के नाम मौत की आज्ञा, डेथ वारन्ट, निकलवायी थी। अस्तु—वज़ीर के मुसाहब आला एक सूचा नन्दी ने नवाब को फिर अपनी दुष्कृति की ओर दृढ़ करके कहा 'इन काले के बच्चों को छोड़ना ठीक नहीं है।' वजीर खां स्वयम् अपने धर्म्म पालन को तय्यार बैठा था, इधर प्राचीन हिन्दू धर्म्मावलम्बी की ओर से पुष्टि हुई, फिर स्वयं ब्राह्मण देवने इन्हें इस निमित्त बन्दी कराया था, रही सही कसर भी पूरी हो गयी।

जल्लादों ने पापिष्ट के मुंह से 'मारो' शब्द के होते ही निर्दोष बच्चों का शिर धड से अलग कर दिया। प्रजा वर्ग में क्या हिन्दू क्या मुसलमान (क्योंकि हिन्दू जाति के ही लोग प्रजा में मुसलमान भी हैं) सब को इस निर्दयता के दृश्य को देख कर दुख हुआ वजीर और सूचा के प्रति घोर घृणा हुई और नगर में हा हा कार मच गया। जब यह कुसमाचार माता गूजरी को मिले उसने समझा कि मैंने गुरु की आज्ञा को पुत्र समझ कर नहीं माना उसका कुछ परिणाम क्या हुआ और दुख व आन्तरिक शोक से कारागार की खिडकी से नीचे गिर कर प्राण त्याग दिये। यह समाचार भारत के कोने कोने में फैल गया चारों ओर से प्रजा के मुख से यही सुनाई देता था —'अब इन अत्याचारों के प्रतिकार का दिन दूर नहीं है, अब मुग़लों के या मुसलमानों के पतन का समय आगया, देर नहीं है।'

अध्याय सातवां

गुरू गोविन्द के जीवन का तीसरा पहर

सिरसा पार होकर गुरु गोविन्द देव अपने दो किशोरों और कुछ थोड़े से आदमियों के साथ रोपर की ओर चले, मार्ग में रोपर के पठानों ने लोहा मांगा। यद्यपि सिक्खों ने पठानों को इतना मारा कि प्रति सौ १०-१२ कठिनाई से बच कर गये होंगे, परन्तु इनके भी सत्तर पचहत्तर आदमियों से आधे खेत रहे। पीछे शत्रु दल आरहा था यह आगे बढ़ते हुए पहुंचे। यहां ग़रीबसिंह नामक एक कृषिकार ने इन्हें एक स्थान में प्रतिष्ठा पूर्वक ठहराया। यह स्थान एक प्रकारसे युद्धक्षेत्रके धुस्स के समान बनाथा, चारों ओर खाईथी और खाईकी मिट्टी भीतरी रेखा के ऊपर डाल कर छोटी सी भीत बनाई गयी थी। प्रायः युद्ध क्षेत्रों में ऐसा शीघ्रता के साथ बना कर तब मोर्चा स्थापन करते हैं। इस प्रकार के स्थान को संस्कृत में क्षेत्र परिखा कोट कहते हैं। यह स्थान गुरु गोविन्दसिंह को बहुत पसन्द आया, क्योंकि यह जानते थे कि शत्रु दल हमारी खोज में फिर रहा है, इसलिये जहां तक सुरक्षित व समरो-पयोगी आवास मिले उत्तम है।

इस परिखाकोट में यह एक ही दिन विश्राम करने व अपने अस्त्र शस्त्रों की मंजाई सजाई करने पाये थे दूसरे दिन शत्रु दल ने आ घेरा। एक रात के विश्राम और कच्चा धुस पाकर सिक्ख लोग सिंहों की भांति लड़ने को गरज कर उठे। इनके वीरों ने शत्रुदल के इतने योधा काटे कि बची हुई शत्रु

सेना में एक बार खलबली मचगई। लेकिन वहां केवल ३०-३५ योधा और उनकी रण सामग्री और कहां राजकीय साज समान, सिक्खों के पास रण सामग्री न रही और लोग भी कुछ और कम हुए।

जब सिक्खों को सिवा कायरों की भांति शत्रु के शरण जाने के और कोई उपाय न रहा तब धर्म्मवीर कुमार अजीतसिंह ने जिनकी अवस्था अभी केवल सोलह वर्ष की थी, कहा—'पिता जी! यदि आप आज्ञा दें तो मैं रणभूमि में जाकर वीरगति को प्राप्त होने का पवित्र उद्योग करूं, क्योंकि कायर की भांति यवनों के हाथ से मारा जाना या बन्दी होकर घातकों के हाथ से प्राण गवाना उचित नहीं प्रतीत होता।"

इस किशोरसिंह शावक को मर्म्म भेदी वीरोचित प्रार्थना को सुनकर गुरु गोविन्ददेव ने उत्तर दिया—

"शाबाश! यही वीरों का धर्म्म है, जाओ और आर्य्यावर्त, हिन्दू जाति और धर्म्म के निमित्त अपना कर्तव्य पालन करो। वीर मृत्यु ही मनुष्य को स्वर्ग ले जाती है, कायरों का जीना मरने स भी बुरा है। राजकुमार अजीतसिंह जी पिता की आज्ञा प्राप्त कर ८-१० वीर सिक्खों के साथ परिखा से बाहर निकले। और आपने जिस वीरता के साथ समरभूमि मे आकर शत्रु दल को काटा, उसे देख कर मित्र और उदासीनों की तो बात ही क्या थी, शत्रु भी प्रशंसा करने लगे, चारों ओर से वाह वाह की प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी। इस वीर बालक के हाथ में शत्रु घायक असि थी और मुख पर सर्व सुख दायक परम पिता परमात्मा का नाम। इनकी

वीरता को देख कर प्रधान सेनापति और स्वयम् भोगपति वजीर खाँ ने अपने परम प्रसिद्ध वीरों से कहा कि इस वीर बालक व इसके साथियों के साथ, बन्दूक से नहीं किन्तु तलवार लेकर द्वन्द युद्ध करो। परन्तु किसी भाई के लालका साहस न पड़ा कि सामने खड़ा होकर हाथों हाथ असि का हाथ दिखाता। अन्त मे शत्रु दल को पकी खेती की तरह काटता हुआ राजकुमार अजीत सिंह वीरगति को प्राप्त हुआ और भारत के आधुनिक इतिहास मे अपना नाम अमर करके स्वर्ग धाम पधारा।

अपने बड़े भाई को इस प्रसिद्ध और वीरता के साथ वीर गति को प्राप्त होते देख छोटे भाई जुझारसिंह से न रहा गया। युद्ध के उत्साह से प्रेरित हो इस राजकुमार ने भी पिता से आज्ञा मांगी। वीर पिता ने अपने हाथों से इस युयुत्सु वीर बालक को वस्त्र, आभूषण, अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित कर रणभूमि में जाकर स्वर्ग प्राप्त करने की आज्ञा दी। इसके रूप लावण्य, चाल ढाल और शोभा सौन्दर्य्य को देखते ही बनता था, विदा होते समय इन्होंने अपने पांच सात वीर साथियों से कहा 'मुझे एक कटोरी जल और पिलादो।' यह बात सुन भारत सपूत, सिक्खों का नाम अमर करने वाले गोविन्दसिंह जी ने कहा,—'वत्स! देवगण इन हाथों में अमृत का प्याला लिए तुमको पिलाने की बाट देख रहे हैं। अब देर मत करो जाओ और अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ अमृत पान करो।"

वीर पिता से १४ वर्ष के वीर पुत्र ने यह बात सुन फिर पीछे मुड़कर दृष्टि नही डाली और सीधा रणभूमि में सिंह

की तरह कूदकर जा पहुचा। युद्ध के उत्साह से परिपूर्ण युवा कुमार शत्रु दल में घुस कर ऐसा पड़ा जैसे पौराणिक शार्दूल हाथियों के झुण्ड में पड़ती है। एक झपट में शत्रुदल का संहार करता उस पार निकल जाता और फिर उन्हीं पैतरों मुसलमानों को अपनी असि का प्रताप दिखाता हुआ इस पार आजाता। इस प्रकार यह परम प्रतापी वीर बालक नदी की भांति उमडी हुई मुगल सेना को कई बार तैर कर उस पार से इस पार और इस पार से उस पार गया आया। शत्रु दल अचम्भे भय और निराशता से इसकी नन्ही सी तलवार की ओर देखता स्तम्भित रह गया। इसके रानों के तले का पहाडी घोड़ा भी देवात्मा को भांति इधर से उधर, उधर से इधर जाता था किसी को इसके टापतक देखने का अवसर नही मिलता। चारों ओर से शत्रु दल के वड़े वड़े मुसलमान सूर सामन्त—मर हबा! वाह, वाह, कर रहे थे और सोचते थे कि ऐसे वीर बालक का प्राण न वध कर फलने फूलने दें। इतने में प्यास, थकावट और घावों के कारण वीर जुझार सिंह अपने साथियों सहित भारत माता की पवित्र गोद में सदा के लिये सो गया। भारत की वीरता के पवित्र इतिहास में यद्यपि अगणित पवित्र आत्माओं का स्मारक है, परन्तु इन दो बालकों का हाल महाप्रलय तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। इस कुमार का शरीर धराशायी होने आत्मा आत्मा के स्वर्गधाम पाने के समय सूर्य छिप गया था। चारों ओर रात की अंधेरी ने सेना के पैरों की धूलि के साथ मिलकर शीघ्र इस अवसर पर यवनों का पतन किया।

यद्यपि दो महत वीर पुत्रों के, प्रसिद्ध वीर सहयोगियों

के साथ, समरभूमिशायी होने का हृदय विदारक दृश्य गुरु गोविन्द सिंहजी के सामने था; परन्तु उनके मुख की कान्ति में तनिक भी उदासी की झलक न थी, उलटा उनका उत्साह, उनका तेज, उनकी मुख कान्ति और उनकी प्रसन्नता पहले से कहीं अधिक प्रकट होती थी। यद्यपि सूर्य्य छिप गया था अंधेरा छाया था परन्तु इस वीर के वाण निरन्तर शत्रुओं के प्राण हर रहे थे, परिकोट के ऊपर से गोलियां नीचे खड़े शत्रुदल का संहार कर रही थीं। परन्तु शत्रु दल ने इसकी कुछ परवाह न की और यह समझा कि रात में सिक्ख हमसे कहां भाग सकते हैं, उठ प्रभात हम लोग या तो गुरुगोविन्द को वशदी करलेंगे या मारलेंगे।

मुग़ल सेनापति के इस विचार से सिक्खों को अवसर मिल गया और गुरु के लाड़लों ने गुरु देव को इस वात पर दबाया कि पांच सात सिक्खों को इस कच्ची गढ़ी में अधिकार सौंप कर आप यहां से निकल चलें। इस परामर्श के अनुसार आधीरात के अंधेरे सुनसान में अपने तीन लाड़लो के साथ गढ़ी से गुरुदेव ने प्रयान किया। उधर मुग़ल सेना के प्रहरियोंने आहट पाकर हल्ला मचाया और सेना में निकल कर जाते हुए शत्रुओं के पकडने के निमित्त तय्यार होने का विगुल वजाया गया। तुरन्त मुगल सेना ने पीछा किया। अंधेरे में मुग़लदल विभक्त हो गया और एक दूसरे को न पहिचान सकने के कारण आपस में ही मारकाट करने लगा। इधर इस गोलमाल में गुरु देव का साथ भी लाड़लों से छूट गया। अकेले गुरु गोविन्दसिंह जी खेरी के सिमाने में पहुंचे। मार्ग में गूजर मुसलमानों ने इनके मार्ग में वाधा

डाली गुरु साहब इनको कुछ स्वर्णमुद्रा (मुहरें) देने लगे पर जब यह न माने तो हार कर इन्हें प्राण दंड दे आप सूर्य्योदय होते होते भोलापुर पहुंचे और पासही एक सघन पेड़ों के कुञ्ज में छिप कर थकावट के कारण आराम करने लगे। दिन भर के समर के पश्चात् रात भर की यात्रा से अत्यन्त थके तो थे ही थोडा सा दिन चढ़ते ही जोर की प्यास लगी, पर पास में कही पानी दृष्ट न पड़ने से आपने आक के पत्तों का रस निकाल कर अपनी प्यास वुझाई। रस पीते ही कुछ तो थकावट से कुछ आक के रस के मद से आप अचेत हो गये। बहुत रात गये जब चेत हुआ तो आपने फिर यात्रा करनी चाही पर शरीर की शक्ति ने साथ न दिया।

पाठक जानलें कि गुरु साहब ने घोड़े की टापों के शब्द से मुग़लों का पीछा करना सम्भव जान रात में जब लाडलों का साथ छूटा था, घोड़ा वहीं छोड़ दिया था और नगे पाव भोलापुर के पास तक पहुचे थे। मार्ग में कांटों व झाडियों में आप के पैर तो छिदे ही थे सारा शरीर छिल गया था और कपडे जगह जगह से नुच गये थे। फिर भी आप उठ कर चले पर थोड़ी दूर पर घास के ऊपर गिर पड़े, शरीर से रक्त वहरहा था, इसी दशा में सारीरात आप परमात्मा के गुणानुवाद के भजन गाते रहे। इस समय के गुरु साहब के भजन पाठ करने योग्य है। इन्होंने अपने भजनों में कहीं भी शोक सूचक एक शब्द नही कहा, केवल आर्य्यावर्त की रक्षा सिक्खों की भलाई और अपने सदुपदेश की सिद्धि की प्रार्थना की ससार की तुच्छता, आत्मोत्सर्ग की महिमा और ईश्वर का महत्व वखाना।

ऊषाकाल के कुछ पहले रात की शीतलता और ईश्वर के गुणानुवाद से प्रशान्त हो आप उठ कर मालवा की ओर चल पड़े। दिन चढ़ते ही आप फिर थक कर मच्छीवाड़े के समीपवर्ती एक उद्यान में जा पड़े। ईश्वर ने इनकी रात की प्रार्थना शीघ्र सुनी और तीनों लाड़ले इन्हें ढूंढते २ उसी उद्यान में आन पहुंचे। एक माली के मुख से इन्हें सूचना मिली कि 'तुम्हारे से ही वस्त्र व वेशधारी एक पुरुष वाटिका के भीतर लेटा है। तुरन्त यह लोग सीधे वाटिका के भीतर गये तो गुरु के दर्शन करते ही इनके आनन्द की सीमा न रही, दौड़ कर पैरों पर गिरे। सोता घायलसिंह शत्रुदल के लोगों की आंशका से आहट पाते ही खड्ग, हस्त खड़ा हो गया, किन्तु शत्रु के बदले लाडलों को पा उन्हें छाती से लगा कर बैठ गया। चेहरे पर जो थकावट का कुछ मैल था मन्द मुसकान में परिणत हो गया, लाडलों ने इनके पैरों के कांटे निकाले, कपड़ों व समस्त शरीर में लगे झाडियों के कंटक बीने। इस के उपरान्त मानसिंह गुरुदेव को पीठ पर चढ़ा कर एक पास के कुए पर लेगया और यथा विधि स्नान कराया।

इस वाटिका के स्वामी गुनी खां व नबी खां रुहेले थे जिन से गुरु महाराज ने अनेक वार घोड़े ख़रीदे थे, दयालुता का व्यवहार किया था अतः प्रेम सम्बन्ध था। जब यह दोनों वाटिका में आये तो महाराज को इस कष्ट में देख बड़े दुखी हुये और आंखों में आंसू भरे ईश्वर की ओर हाथ उठा कर शपथ की हम लोग वश पड़ते आपकी सेवा में कुछ उठा न रखेंगे और अवसर पड़ने पर प्राण तक आपके निमित्त विसर्जन करने से न हटेंगे। गुलावा मसनद भी सूचना पाकर गुरु के

दर्शनों के लिये घाटिका में आया और गुरु देव व लाड़ले के लिये साथ में भोजन भी लेता आया था। भोजन पाकर परितृप्त होने के पश्चात् गुरु देव ने गुलाब की ही छत के कमरे में आराम किया।

गुरु महाराज अच्छी तरह आराम भी न करने पाये थे कि मुसलमानी सेना ने आकर ग्राम घेर लिया। लेकिन यह लोग ग्राम में घुस कर अच्छी तरह सिक्खों की खोज भी न करने पाये थे कि रुहेल बन्धुओं की सहायता से नील वस्त्र धारण कर वेश बदल गुरु महाराज निकल गये। इनके साथ साथ दोनों रुहेला बन्धु भी दो मंजिल तक गये। तीसरे दिन जब मुसलमानों के अत्याचार के भय की सीमा के बाहर पहुंचे तो दोनों रुहेले अपने ग्राम को लौट पड़े। गुरु महाराज ने इनकी सेवा के बदले अपने शिष्यों के नाम आज्ञापत्र लिख दिया कि वह लोग इनकी इस सेवा का यथावत स्मरण रक्खें और इनका उचित सम्मान करें।

रुहेलों से विदा हो कर आप आगे बढ़े और जब आलमगीर नामक ग्राम में पहुंचे तो अचानक भाई मनीसिंह का लघुभ्राता मिल गया, इसने इन्हें एक सुन्दर अश्व भेंट दिया जिसे आपने आनन्द व स्नेहपूर्वक स्वीकृत किया। इसी घोड़े पर सवार हो गुरु महाराज आगे बढ़े मार्ग में एक मुसलमान भूमि धर सरदार राय कल्ला से भेंट हुई। यह जन्म का राजपुत्र था पर मुसलमान हो चुका था। गुरु महाराज का हाल सुन कर यह दुखी हो रोने लगा और आग्रह पूर्वक गुरु से प्रार्थना की कि 'आप जब तक मेरा घर पवित्र करके भोजन न ग्रहण करेंगे मैं आपको न जाने दूंगा।' गुरु महाराज ने

इसका प्रेम और आग्रह देख निमंत्रण स्वीकार किया और इस रात को गुरू यहां ही ठहरे और फिर दूसरे दिन भी रहे रात के समय गुरू महाराज ने एक दूत सरहिन्द को अपने स्त्री बच्चों का समाचार लाने भेजा। दूसरे दिन इस दूत ने लौट कर गंगा ब्राह्मण की सारी करतूत गुरू देव के सामने निवेदन की। हम गंगा ब्राह्मण का हाल यथा स्थान बतला आये हैं, पाठक अभी उसे भूले न होंगे। गुरु गोविन्द ने अपनी माता और पुत्रों का वध का हाल सुन लिया पर इनका हृदय तनिक भी नहीं हिला। आप उसी दृढ़ता, उसी देशानुराग और ईश्वर भक्ति के साथ वीरोचित बैठे रहे, मानो किसी ने कोई मिथ्या उपाख्यान सुना हो।

यहां से विदा होकर, दूसरे दिन प्रभात में, आप आगे बढ़े औरे दीनापुर में पहुंचे। यहां राय योधा के वही तीनों सन्तान लक्ष्मी, शरीर व तख्त मिले जिनकी पवित्र सेवा सहायता से गुरु हर गोविन्द देव को मुग़ल सेना पर विजय प्राप्त हुई थी। पाठकों को इस युद्ध के हाल जानने के लिए सिक्ख इतिहास में गुरु सरका समर वृतान्त देखना चाहिए। इन भ्राताओं में से प्रत्येक ने दूसरे से बढ़कर गुरु गोविन्दसिह की सेवाकी इन की शुश्रुषा और भक्ति से मुग्ध गुरु महराज वहां ठहर गये। यहां पर आप के ठहरने का समाचार सुन चारों ओर से सिक्ख लोग भेंटें ले लेकर आने लगे। आप धर्म प्रचार करते और आनन्द पूर आदि के युद्धों का वर्णन ऐसी विशुद्ध और स्पष्ट व्याख्या के साथ करते कि श्रोताओं का कलेजा हिल जाता। कुमारों की वीरता उदारता और धर्म्मवत्ति होने के समाचार सुनकर सुननेवालों के

हृदय में सच्चे वीर रसका संचार होता, क्रोध से ओठ और बदले की कामना से भुजाएं फड़क उठीं। आप की बातों से प्रजा को जीने मरने का सच्चा ज्ञान होता और लोग समझते कि हिन्दू माताएं अभी वन्ध्या नहीं हुई हम लोगों का काम है कि अपनी मान मर्य्यादा के लिए अपनी रमणियों के सतीत्व के निमित्त और देश प्राण की रक्षा के वास्ते और आर्य्य धर्म्म व नाम की खातिर समर भूमि आकर या तो वीर गति को प्राप्त हों, या विदेशियों, विधर्म्मियों विजातियों और अत्याचारियों को जीत कर भारत के सच्चे पुत्र बने।

गुरु महराज के दीनापुर में अधिक निवास का समाचार वजीर खां को मिला पाठक इस निर्दयी अत्याचारी हत्यारे सरहिन्द के भोगपति को भूले न होगें। इसी ने दो छोटे गुरु कुमारों (जोरावरसिंह व फतेहसिंह) को भीत में चुन कर वध किया था। वजीरखां ववरा उठा और लक्ष्मी व सुमेर को पत्र लिखा कि जो तुम राज्य के शत्रु गुरु गोविन्दसिंह को हमारे हाथ में समर्पण न करोगे तो तुह्मारा भला नही है। इन वीर राजपुत्रों ने उत्तर दिया कि, हम अपने गुरुदेव की सेवा नहीं त्याग सकते, वरन काम पड़ने पर घर बार, धन ऐश्वर्य, पुत्र कलत्र और तन प्राण त्याग सकते है।

गुरु गोविन्दसिंह जी को इस लिखा पढ़ी से निश्चय हो गया कि हमको फिर अपने चिर शत्रु दुष्ट वजीर खां से लोहा लेना पड़ेगा। अतः आपने चारो ओर सिक्खों के नाम आज्ञाएं निकाल दीं कि सब लोग युद्ध के लिये तैयार होकर सिक्ख झण्डे तले दीनापुर में इकट्ठे हों। चारों ओर सिक्ख आ आकर सेना में भरती होने लगे। बराड़ जाति के जाटों ने

सेवा स्वीकार की और इनकी एक बड़ी भारी सेना तैयार हो गयी। इस प्रकार से फिर गुरु महाराज के पास देशहित रक्षा और विजातियों के दमन के लिये एक उत्तम दल बन गया। समर आरम्भ होने से पहले गुरु महाराज ने निम्न आशय का एक पत्र औरङ्गज़ेब को लिखकर भेजाः—

'तुम्हारे ही कर्मचारियों के अत्याचारों और अनीतियों से दुखी विलासपुराधीश की दुष्टता से हम लोगों को आत्मरक्षा के लिये शस्त्र धारण करने पड़े। उन्हीं की भूलों व चालों से राजधानी के असंख्य मनुष्यों के प्राण गये पर राजा का कोई भी हित साधित न हुआ। मेरे साथ नाना प्रकार के छल किये गये नबी और कुरान की शपथ को भी तोड़ कर इनकी भी अप्रतिष्ठा की गयी। क्या आप समझते हैं संसार भर का स्वामी गुरुदेव ऐसी दुष्कृतियों का दंड दिये बिना छोड़ देगा। न हमारे पूर्वज गद्दीदार थे न मैं सांसारिक वैभव का लोभी हूं, हम लोगों का उद्देश है धर्म का प्रचार तथा प्रजामात्र के हृदय में ईश्वर का भय संचार करना। ऐहिक ऐश्वर्यों से विमोहित और धर्म्मान्धकता से प्रधारित आप या आपके कर्मचारी गण उस समय तक सन्तुष्ट न होंगे जब तक कि धर्मनिष्ठ राज्य नियमानुगामिनी शान्तिशीला प्रजा व्याकुल होकर उपद्रव करने को न खड़ी होगी और अपने बाहुबल से इन अत्याचारों का अन्त न करेगी।'

गुरु महाराज ने इसमें दूसरी घटनाओं को विस्तार से लिखा था हमने केवल ऊपर उसका सारांश दिया है। विलासपुर के राजा की दुष्टता से जो प्रथम उपद्रव हुआ था वहां का आपने वर्तमान दिन तक का चित्र इस प्रकार खींचकर निर्भय

सारगर्भित शब्दों में गुरु महाराज ने औरंगज़ेब को भेजा कि उसका हृदय भय से कांप गया। प्रति उत्तर में उसने गुरु महाराज को अपने पास आने के लिये पत्र भेजा। यह सब एक दिन का काम तो था ही नहीं औरंगज़ेब के पत्र आने के पहिले ही इधर वजीर खां से युद्ध हुआ, जिसके लिये गुरु महाराज भी तैयारी कर चुके थे।

पाठक भूले न होंगे कि आनन्दपुर से माझा के कुछ सिक्ख लोग गुरु से वेदावा लेकर चले गये थे। जब यह लोग घर पहुंचे तो इनकी स्त्रियों ने इन्हें भर्त्सना पूर्वक कहा-'अच्छे आये, अब तुम घर में घाँघरे पहन कर बैठो और हम लोग गुरु के लिये सिर कटाने जायेंगी। दूसरी ओर गांववालों ने भी धिक्कारा जिससे इनके जी लज्जा, और पश्चात्ताप से फटने लगे। अन्त में ४०, ५० सिक्ख फिर गुरु की क्षमा प्राप्त करने तथा सेवा करने को गुरु के पास मालवा को चले। गुरु सेना एक जंगल में पडी थी। ये सिक्ख गुरु के पास से थोडी ही दूर रह गये थे कि इन्हें मुगलों की सेना सामने आते दीखी। इन्होंने गुरु के पास जाने का विचार स्थगित करके वहां ही गुरु की सेवा करने की ठान ली और पेडों के कुञ्ज में छिप गये।

जब मुग़लों की सेना मार के भीतर आगयी तब इन्होंने कुञ्जों में से तीर, गोली आदि से मुग़लों पर वार करना आरम्भ करादिया। मुग़ल सेना ने समझा कि गुरुगोविन्द सिंह की सेना यहां ही पड़ी है और आगे न बढी। लेकिन उसी जगह से मुग़लों ने अनुमान किया कि सेना थोडी है और आगे बढ़े, यह ५० सिख माई के लाल एक एक करके वीर

गति को प्राप्त हुए। इतने में ज़ोर से आँधी आई और धूलिने आकाश को आच्छादित करलिया,अबतो मुग़ल सेनापति घबराया उसने समझा कि सिक्खों की प्रधान सेना आ पहुंची, और थोड़ी भी नहीं, इतनी अधिक कि जिसके पैरों की धूल से आंकाश में अंधेरा छागया। सरहिन्द का भागपति अन्धकार में अपनी सेना का नाश निश्चय जान दल बल सहित रणभूमि छोड भागा।

दुपहर की प्रखर ताप में लडकर जो सिक्ख स्वर्गवासी हुए थे उनमें से कुछ में थोड़ी जान थी पर प्यास के मारे तड़प रहे थे। जब मुसलमान दल विचलित हो भागा तो गुरु महराज को खबर हुई आपने आगे आकर देखा तो उजाड जङ्गल में जहां न घर, न छिपने की जगह सिवा पेड़ों के एक दो कुञ्ज के, न पानी का नाम, सिक्खों का ढेर पड़ा है। आपने दौडकर देखा तो एक एक शिष्य को पहचान लिया। अब आपको ज्ञात हुआ कि गुरु और देश के निमित्त आगे बढ़कर प्राण देनेवाले, कई सहस्र सुशिक्षित राज्य-सेना को भगानेवाले दो कोड़ी उनके शिष्य थे वह शिष्य जो बेदावे पर हस्ताक्षरकर चुके थे। एक एक करके गुरु ने सब का सिर उठाकर जंघे पर धर उनके मुख अपने रूमाल से पोछे और नाम ले लेकर उनकी प्रशंसा की और आशीर्वाद दिया और ठीक ऐसा वर्ताव किया जैसे कोई अपने छोटे बच्चे को कष्ट की दशा में गोद में लेकर वर्ताव करता हो। इस तरह करते करते एक मदन सिह की बारी आयी, इसके तन में प्राण शेष थे। जब गुरु ने इसका शीश जघे पर रक्खा तब इसने आंख खोलदी, गुरु की गोद में अपने को देखकर

आनन्द से भरगया, भारी चोट और प्यास भूलकर गुरु मुख चन्द्रका चकोर एक टक देखने लगा। गुरु को इस समय जो आनन्द हुआ वह वही जानता है जिसपर ऐसा अवसर पड़ा हो। इन गुरु शिष्यों की हार्दिक दशा का कहना लेखनी और वाणी की शक्ति से बाहर है। मीरा ने सच कहा है–'घायल की गति घायल जाने जापर बीती होय।'

गुरु ने इस प्राण प्रिय शिष्य से पूछा तुम जो कुछ इच्छा रखते हो उसे मैं पूरी करने को तयार हूं। अहा, प्यारा शिष्य पानी नहीं मांगता, प्राण नही रखना चाहता, स्त्री बच्चों के वास्ते सांसारिक सुख नही चाहता,–गुरु से चाहा क्या है? प्रभो! टूटी को जोड दो, अपराध क्षमा करो, मुझे व मेरे साथियों को क्षमा करो और अपना शिष्य पूर्ववत् समझो, बस! गुरु के नेत्रों में आँसू भर आये, आपने जेब से बेदावा निकालकर उसके सामने टुकड़े २ करके फेंक दिया। मदन आनन्द के अश्रु बहाते आनन्दपूर के अपराध की क्षमा से सन्तुष्ट होते गुरु की गोद में पड़े, वाहगुरु कहकर परम गुरु के शरण में जा पहुंचा। आज इस घटना का स्मारक मुक्ति सरनामक (तालाब) है हमारे पाठक चाहें तो जाकर देख सकते हैं। यह सिक्खों का नहीं नहीं भारतमाता के प्रत्येक वीर पुत्र का, सच्चा तीर्थ है। यह सिक्खों का यद्यपि पहला या अन्तिम बलिदान नथा तथापि अन्य बलिदानों से,सिवा कुमर अजीत और जुझार, जोरावर और फतेहसिंह के किसीसे कम नथा इन सिक्खों की गुरुभक्ति,गुरुकी पीठके पीछे फिर जबकि नाता तोड चुके हों, सिक्खों की अन्तरात्मा परिचय दे रही है

पाठक याद रक्खें कि सिक्ख लोग अभी तक कभी भी

पैसे के लिये नहीं लड़े थे; अभी तक उनकी सेना में भाड़े के टट्टू नहीं थे किन्तु माता के दुलारे वह 'अनुगामी' थे जो अपने घर से अन्न वस्त्र, अस्त्र शस्त्र आदि का प्रबन्ध करते और अपनी इच्छा से गुरू की आज्ञा से आर्य्यावर्त की स्वाधीनता के लिये प्राण देते थे ' परन्तु मालवा में जाकर यह बात न रही एक वैतनिक दल भी रखने की ज़रूरत पड़ी। फिर भी यह दल उन कमीनों से अच्छा था जो पेट के लिये विदेशी, विधर्म्मी, विजाती लोगों का पक्ष लेकर स्वदेशी, स्वधर्म्मी और स्वजाति के लोगों के हित को हानि पहुंचाते हैं। यह धिक्कार व घृणा के भाजन हैं परन्तु वे प्रतिष्ठा और पूजा के पवित्र पात्र हैं। एक बार मालवा के वैतनिक जाटों ने वेतन के लिये उधम मचाया गुरू के पास धन न था, सौभाग्य से एक शिष्य विदेश से बहुत सा धन भेंट लेकर आ पहुंचा। गुरू महाराज ने सब वैतनिकों का वेतन चुका कर कह दिया कि 'अब तुम लोग घर जाओ टके के लिये काम करने वालों से देश हित कठिन है, और सब चले गये।'

अध्याय आठवां

गुरू गोविन्दसिंहजी के जीवन की अन्तिम झलक

इन्हीं दिनों एक मुसलमान साधु ने जो जाति का सय्यद था, सिक्ख धर्म्म ग्रहण किया, गुरू महाराज ने इसका नाम अजमेरासिंह रक्खा। इसने गुरु महाराज का बहुत साथ दिया, सिक्ख इतिहास में यह प्रसिद्ध योधाओं में एक है। इस प्रकार से सिक्ख धर्म्म का सार्वभौम्य होना प्रत्यक्ष है। सिक्ख धर्म्म को पौराणिक हिन्दू धर्म्म की शाखा समझना भूल है, सिक्ख धर्म्म सच्चे वैदिक धर्म्म के प्रचार व पुनरुद्धार का बीड़ा ले कर उठा था, बिना देशकाल व पात्रभेद से कार्य्य पूरा न होने पाया, इसी काम को दूसरी वार स्वामी दयानन्द महाराज ने उठाया, पर यह भी अभी तक बाल्यावस्था में ही है। चाहे ऊपरी मत भेद हों, चाहे कुछ कुछ बाहरी रीतियों में अन्तर हो पर सिक्ख धर्म्म व आर्य्यसमाज के पारमार्थिक अंग में मुझे कुछ अन्तर नहीं दीखता। गुरुनानक की जपजी जो गुरुगोविन्द सिंहजी आजन्म प्रधान मान कर जप किया करते थे वैदिक आज्ञा के अक्षरशः अनुकूल है। समय आ गया है कि ओंकार उपासक मात्र एक झण्डे तले इकट्ठे होकर आर्य्यावर्त का एक वैदिक धर्म्म फिर स्थापित करें दोनों प्रकार के प्रसिद्ध कैतवों से प्रजा की नाक में दम है। अच्छा हो जो गुरु गोविन्द सिंह तथा स्वामी दयानन्द की आत्मा मिल कर काम करें।

यद्यपि वज़ीर खां भाग गया था पर उसे गुरू साहब की ओर से भय बराबर बना रहा। जब इसने सुना कि मालवा के बड़े बड़े रईस धराधर सूर सामन्त व सरदार गुरु महाराज की दीक्षा लेते हैं, उनके पथ में जाते हैं, उनके साथ हार्दिक प्रेम रखते हैं, तो इसका कलेजा हिल गया। इसने पहले तो राय डल्लासिंह को कई पत्र लिख कर धमकाया कि देखो तुम राज विद्रोहियों को शरण देते हो इसका फल अच्छा न होगा। राय डल्ला ने साफ़ उत्तर दिया कि 'हम लोग धर्म्मानुसार गुरू की सेवा करने को बाध्य हैं और इस विषय में हम किसी की कुछ मान नहीं सकते। गुरू द्रोही होने से मरना हम श्रेयस्कर समझते हैं, अतः हम से कोई इस प्रकार की आशा तुमको न रखनी चाहिये जो गुरु महाराज के प्रतिकूल पड़ती हो।'

यह अहंकार पूर्ण राजकीय आज्ञा का अपमानकारी उत्तर पाकर भोगपति वज़ीर के तन बदन में आग लग उठी। इसने औरङ्गज़ेब से सेना व सहायता की प्रार्थना की और लिखा कि 'राज के घोर शत्रु गुरु गोविन्द सिंह और उनके सहायक जाट सरदारों को दण्ड दिये बिना किसी समय बड़ी भारी हानि होने की आशंका है अतः यह सहायता शीघ्र प्रदान की जाय।

इधर गुरु साहब ने आदि ग्रन्थ का नया संस्करण अपनी निज स्मरण शक्ति के आधार पर कराया क्योंकि बाबा धीरमल के पास मूल ग्रन्थ था उन्होंने देने से न केवल इनकार किया बल्कि गुरु महाराज के प्रति कुछ अश्रद्धा प्रकाश करते हुये कहला भेजा कि आपको अपनी बुद्धि व स्मरण शक्ति का बड़ा

घमण्ड है तो क्यों नही नया ग्रन्थ लिखवा लेते। वास्तव में गुरु महाराज को स्मरण शक्ति ऐसी ही थी कि उन्होंने सारा आदि ग्रथ आद्योपान्त फिर से लिखा कर तय्यार कर लिया। इन्हीं दिनों गुरु महाराज की दोनों स्त्रियां भी दिल्ली से आ गयी। हम कह चुके है पुत्र न होने के कारण माता और अपने शिष्यों के आग्रह पर आपने दूसरा विवाह किया था। यह ऊपर वतलाया जा चुका है कि आनन्द पूर से किस प्रकार यह दोनों महिषियां पुरुष के वेश में दिल्ली जाकर एक शिष्य के यहां अपना सतीत्व रक्षा करती रहीं। यहां आने पर इन वेचारियों को अपने सासु और चारों पुत्रों के स्वर्ग वास का पता लगा। स्त्रियों के स्वभावानुसार इन्होंने वहुत विलाप किया किन्तु गुरु महाराज निश्चल हृदय इन्हें संसार की असारता वतलाते व समझाते वैठे रहे।

इधर वजीर खां ने गुरु गोविन्द पर चढ़ाई करने के लिये औरगज़ेव से आज्ञा व सहायता मांगी उधर गुरु महाराज पत्र औरजेज़ेव के पास पहुंचा। गुरु महाराज का पत्र लेकर स्वय लाडला दयासिह गया था औरगज़ेव इसके आचरणों व गुरु महाराज के लिखावट से मुग्ध हो गया। यद्यपि औरगजेव सदृश धर्म्मान्ध होना कठिन है तो भी उसे अपने भोगपतियों व अधिकारियों की भूल का दयासिह के समक्ष पश्चात्ताप करना पड़ा और माननापड़ा कि अकारण वहुत से मनुष्यों का रक्तपात करके राज के विरोधियों की सख्या वढाई गयी और यह सव पहाडी राजाओं की दुष्टता के ही कारण हुआ। औरगज़ेव ने तुरन्त सरहिन्द के भोगपति के नाम आज्ञा भेजो कि गुरु महाराज को उनकी इच्छानुसार जहां

चाहें रहने दो, बल्कि उन्हें बिलकुल मत सताओ। साथ ही वज़ीर खां की प्रार्थना के प्रत्युत्तर में औरंगज़ेब ने वज़ीर खां से जवाब तलब किया कि 'क्यों तुमने पहाड़ी राजाओं के भड़काने से गुरु महाराज के साथ हस्तक्षेप किया, उनके बढ़ते बल को कुचला अकारण मुसलमानी राज्य के प्रति प्रजा के मनों में इतनी घृणा का बीज बोया।

औरङ्ग़ज़ेब ने गुरु महाराज के पास पत्र भेज कर उन्हें देहली बुलवाया गुरु गोविन्द सिंह ने इस के उत्तर में फ़ारसी की ओजस्विनी कविता में लिख कर एक लम्बा पत्र सम्राट के पास भेजा। इस पत्र में गुरु ने एक एक कर के वे समस्त अन्याय गिनवाये जो उन पर किये जा चुके थे और यह लिख दिया कि इन अन्यायों के कारण ही अन्त में विवश हो तथा और कोई उपाय न देख खड्ग उन को उठानी पड़ी थी *। सुन ते हैंकि गुरू के नाम के पत्र में औरङ्गज़ेब ने कुरान की शपथ खायी थी कि मैं आप के साथ आदर का व्यवहार करूंगा। किन्तु गुरू ने अपने उत्तर में उसे स्पष्ट लिखा दिया कि मैं कपटी मुग़ल की शपथों का तनिक भी विश्वास नहीं करता। गुरु गोविन्दसिंह ने सम्राट को उसके पक्षपात तथा प्रजा पीड़न के लिये भी दोषी ठहराया और उसे यह धमकी दी कि एक न एक दिन ख़ालासा तुमसे अवश्य बदला लेगी।

औरंगज़ेव ने इसी समय एक विशेष दूत के द्वारा गुरु

---

* इस पत्र की एक पंक्ति यह है—चोकार अज़ हमाह हालते दरगुज़श्त। हलाल अस्त बुरदन व शमशीर दस्त। अर्थात् जब और कोई उपाय न चल सके तो खड्ग उठालेना ही न्याय है।

महाराज को एक पत्र लिखा 'आप आकर मुझे मिलें तो जो कुछ आपको अकारण कष्ट दिये गये हैं उनका यथोचितपश्चात्ताप व प्रतीकार किया जायगा।' गुरु महाराज औरंगजेब से मिलने को चले। अनेक शिष्यों, सरदारों, इष्ट मित्रों ने गुरु महाराज को इस साहस से रोका। क्योंकि औरंगज़ेब सदृश धर्म्मान्ध, प्रजा पीडक और विश्वासघाती मनुष्य पर भरोसा करना प्रत्यक्ष में ही उचित न प्रतीत होता था, तथापि गुरु महाराज नहीं माने। स्त्रियों को फिर दिल्ली में भेजकर आप दक्षिण की ओर जहां औरंगज़ेब महाराष्ट्रों से लड़ रहा था रवाना हुये।

लेकिन गुरु महाराज और औरंगज़ेब की मुलाक़ात न हो सकी। मार्ग में ही गुरु महाराज को औरंगज़ेब के मरने का समाचार मिला। अब गुरु गोविन्दसिंहजी ने सोचा कि इतनी दूर आकर लौटने से क्या लाभ, अच्छा है कि राजपूताने में सिक्ख धर्म्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया जाय और तदनुसार आप राजपूताने में प्रचार करने लगे। इसी बीच में राजकुमार मुअज़्ज़म का पत्र आया कि आप अपने वचनों के अनुसार मेरी सहायता कीजिये। यह बात भी पाठक भूले न होंगे कि कब व किस प्रकार गुरु देव के साथ राज कुमार मुअज़्ज़म की मित्रता हुई थी।

औरंगज़ेब की मृत्यु के समय राज कुमार मुअज़्ज़म क़ाबुल में था इधर उस का छोटा भाई आजम अवसर पा आप ही राजा बन बैठा। उधर काबुल में ही मुअज्जम 'बहादुर शाह' की उपाधि धारण कर राजा बना और दल बल सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। और मुअज़्ज़म ने दी-

खान नन्द लाल को गुरु गोविन्दसिंह के पास सहायता मांगने के लिए भेजा, क्योंकि आजम व मुअज़्ज़म में गद्दी केलिये विरोध का बीज पड़ चुका था और सिवा खड्ग के और कोई निपटारा करनेवाला न था। गुरु गोविन्दसिंहजी ने पहले ही मुअज़्ज़म को वचन दियाथा तदनुसार सहायता देना स्वीकार कर लिया। गुरुसाहब को सूचना देने की देर थी कि सिक्ख लोगों का दल एकत्र होने लगा। लाडले दयासिंह के सेनापतित्वमें एक बड़ा सिक्ख कटक युद्ध के लिये बात की बात में तय्यार हो गया। आज़्ज़म व मुअज्जम दोनों राज कुमारों में घोर संग्राम होने लगा। एक ओर दिल्ली के राज्य का सारा बल दूसरी ओर मुअज़्ज़म के पक्ष में केवल थोडे से साथी और सिक्ख कटक, अन्त में मुअज़्ज़म की सेना के पैर उखड़ने लगे। इतने में गुरु गोविन्द सिंह जी के तीर से राजकुमार आज़म मारा गया। सरदार के मारे जाने से दिल्ली का दल खेत छोड भागा और सिक्खों की सहायता से मुअज़म की विजय हुई।

दूसरे दिन आगरे के किले में राजकाय महापरिषत् (दरबार) बैठी और राजकुमार मुअज़्ज़म जिसने बहादुरशाह की उपाधि धारण की थी नियमासार दिल्ली के सिंहासन का महाराजा विधोपित हुआ। समय की प्रथानुसार नज़रें गुजरीं, देश के सभी शूर, सामन्त, राजा, महाराजाओं ने भेंटें सामने रक्खीं, मुअज़्ज़म ने भेंटें स्वीकार करने के उपरान्त प्रकाश रूप से दरबार में गुरु गोविन्द सिंह जी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और धन्यवाद दिया। सिक्ख सरदारों को बड़े बड़े पुरस्कार दिये गये और उनकी वीरता

व धीरता को स्वीकार करते हुए बहादुरशाह ने गुरू महाराजको दल बल सहित आगरे छोड़ा आप दिल्ली की ओर प्रस्थित हुआ। पीछे से गुरू महाराज भी वृजमण्डल के प्रसिद्ध स्थानों को देखते सुनते, धर्म्म प्रचार करते और उपदेश देते हुए दिल्ली पहुंचे। बहादुरशाह ने इन्हें बड़े आदर सत्कार के साथ मोतीबाग के प्रशस्त मैदान में बडे बडे शिविर खड़े करके ठहराया और यथेष्ट प्रतिष्ठा के साथ अपनी निज की निगरानी में इनके आतिथ्य का प्रवन्ध किया। गुरू महाराज की ख़ातरी, सेवा और सत्कार में बहादुरशाह ने कोई भी त्रुटि नहीं होने दी और स्वयम् हर प्रकार से देखता रहता कि महाराज को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है।

जब गुरू महाराज ने देखा कि बहादुरशाह गद्दी पर बैठ कर सब प्रकार से अपना काम अपने हाथ तले कर चुका किसी प्रकार के विरोध और उपद्रव की आशंका नहीं रही, तो आपने दो परामर्श दिये—(१) बलात् हिन्दुओं को चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय या समुदाय के क्यों न हों मुसलमान करने की कुनीति उठा देने में ही राज्य का कल्याण है। (२) उन भोगपतियों और शासकों को जिन्हों ने अपने अत्याचारों से देश में चारों ओर अराजकता और राज विद्रोह फैलाया है दण्ड देने से वर्तमान राज्य की जड़ दृढ होगी क्योंकि राजा के प्रति प्रजा का विश्वास व प्रेम स्थापित होने लगेगा।

बहादुरशाह ने अपनी निर्बलता के कारण—कुछ तो यह निर्बलता उसकी आत्मा की निर्बलता के कारण थी और कुछ औरंगज़ेब के अत्याचारों से राज्य की जड़ भी हिल गयी

थी—इनपरामर्शों को कार्य्य में परिणत करने में टाल मटोल से काम लिया और साथ ही अपनी चातुरी और सेवा से गुरु महाराज को—जिनका यह इतना कृतज्ञ था—रुष्ट भी न होने दिया। जब राजधानी में सब प्रकार शान्ति और नियम स्थापित हो लिया तो बहादुरशाह राजपूताने की ओर चला, क्योंकि वहाँ जोधपूर व जयपूर के राजाओं ने शिर उठाया था। इधर बहादुरशाह का राजपूताना जाना था, उधर गुरु महाराज भी गोदावरीके किनारेके एक स्थान नादेढ़में चले गये। यहां से गुरु महाराज का प्रेम सम्बन्ध महाराष्ट्र के सरदारों से हुआ। इसमें इनकी इच्छा किसी प्रकार से मुअज्ज़म के अनिष्ट की न थी, इनका सरल धार्म्मिक स्वभाव, चातुरी इनकी वीरता व गुण ग्राहकता और इनके नाम के कारण जहां पर जाते थे हिन्दू प्रजा इनकी प्रतिष्ठा करती था। यह उन्हे धर्म्मोपदेश करते थे। हिन्दू धर्म्म के अर्थ में ईश्वरोपासना, समाज, नीति और राजनीति सभी सम्मिलित हैं और गुरु महाराज का जन्म ही राष्ट्र के निर्माण के लिये हुआ था, इसलिये आपका महाराष्ट्र सरदारों में भी इनकी पूजा प्रतिष्ठा होना स्वाभाविक था। लेकिन यहां पर गुरु महाराज ने एक साधु को सिक्ख धर्म में दीक्षित किया और इसका नाम बन्दासिंह रक्खा, यह बड़ा वीर और दोर्दण्ड पुरुष था।

बन्दासिंह इतना सुयोग्य और चतुर था इस समय नीति जानने वाला दूसरा इसके समान दक्षिण में एक भी न था। विद्वानता सांसारिक चतुरता, रण कौशल और धर्म्म प्रेम सभी बातों में यह अपने समय का एक अद्वितीय पुरुष रत्न था।

बन्दा सन् १६७० ई० में राजौरी नामक एक ग्राम में उत्पन्न हुआ था। यह ग्राम महाराजा जम्मू और काशमीर के आधीन पूंछ की एक छोटी सी पहाड़ी रियासत में अवस्थित है। बन्दा का पहिला नाम लछमन देव था। उसके पिता का नाम रामदेव था और वह डोगा जाति का राजपूत था। लछमन देव को लड़कपन में मृगया (शिकार) से बडा प्रेम था। एक दिन उसने एक हिरनी मारी परन्तु जब उसे काटा तो उसके पेट में से दो बच्चे जीते हुये निकले और उसके देखते देखते थोडी देर में मर गये। लछमनदेव को यह दृश्य देख कर ऐसी दया आयी कि उसने फिर न केवल शिकार खेलना ही छोड़ दिया वरन् उसने संसार से विरक्त हो वैराग्य धारण कर लिया, इस वैरागी रूप में उसका नाम अब माधोदास रक्खा गया और वह साधुओं की एक मंडली के साथ तीर्थ-यात्रा करने निकल पडा। कुछ समय व्यतीत होने पर वह अपनी विद्वत्ता, धर्मभक्ति तथा दिव्यशक्तियों के लिये अत्यन्त विख्यात हो गया। वास्तव में उस समय के लोग बन्दा जैसे असाधारण योग्यता रखनेवाले पुरुषों के विषय में क्रम से यही समझने लगते थे कि उसमें कोई न कोई अलौकिक अथवा दिव्यशक्ति है। बन्दा ने अब भ्रमण करना छोड़ दिया और वह गोदावरी नदी के तट पर एक छोटे से नादेढ़ नामक विश्रान्त ग्राम में राजकीय शोभा के साथ रहने लगा।

यही स्थान था जहां पर कि १७०८ ई० में बन्दा तथा गुरू गोविन्दसिह की भेंट हुई। गुरु जी को जब कि वे दक्षिण की यात्रा कर रहे थे नादेढ में ठहरने का अवसर हुआ और इस महात्मा की बहुत सी प्रशंसा सुन गुरु उससे मिलने के लिये

गये। गुरु देखते ही पहिचान गये कि वह वैरागी किस प्रकृति का बना हुआ था, और अपने मन में उन्होंने तुरन्त निश्चय कर लिया कि "यह वैरागी ही भविष्य में ख़ालसा दल का नेता बन मेरे महान उद्देश्य को पूरा करेगा।" दोनों में शीघ्र ही गहरी मित्रता होगयी और गुरु के हृदयग्राही वक्तृता तथा उनके धार्मिक उत्साह ने माधोदास के हृदय पर ऐसा गहरा प्रभाव डाला कि वह गुरु का शिष्य होगया, अपने आपको गुरु का "बन्दा" अथवा गुलाम कहने लगा, और उसने अपना जीवन सर्वथा गुरु के चरणों में सौंप दिया। गुरु अपनी इस विजय पर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने माधोदास की सेवा को स्वीकार कर लिया। गुरु ने अपने आदर्श तथा आकांक्षाओं और अपने कष्टों तथा विपत्तियों का संपूर्ण वृत्तान्त उसे सुना दिया था। अब गुरु ने अपने नये चेले से निवेदन किया कि,—"अब आप मेरा कार्य संभालिये मेरे पिता और निर्दोष बालकों के ख़ून का बदला लीजिये तथा मुग़लों के स्वेच्छाशासन के ऊपर प्रहार कर निज जाति को अन्याय के भार से मुक्त कीजिये।

गुरु ने उसे एक खड्ग तथा अपनी तुण्डी में से पांच बाण प्रदान किये और उसे निम्नलिखित पांच आज्ञाएं दीं :—

१—कदापि किसी स्त्री के पास न जाना वरन् जीवन भर ब्रह्मचर्य रखना।

२—सदा सत्य विचार करना, सत्य बोलना और सत्य पर ही चलना।

३—सदा अपने को ख़ालसा का सेवक समझना और उन की इच्छानुसार कार्य करना।

४—कदापि अपना पृथक मत स्थापपित करने का प्रयत्न न करना।

५—कदापि अपनी विजयों पर फूल न जाना, और न कभी राज्य के अभिमान द्वारा उन्मत्त होना।

वन्दा ने बड़े आदर तथा भक्ति के साथ उस खड्ग और उन तीरों को ग्रहण किया और हृदय से गुरु की आज्ञाओं के पालन करने की प्रतिज्ञा की। गुरु ने उसे पंजाब के समस्त सिक्खों के नाम का एक पत्र दिया जिसमें गुरु ने सिक्खों को आज्ञा दी कि वे सब वन्दा को अपना नेता स्वीकार करें और उसके झंडे तले लड़ें। गुरू ने उसे एक ढोल और अपना एक झंडा भी प्रदान किया और अपने चुने हुये अनुयायियों में से पच्चीस को उसके साथ कर उसे पंजाब की ओर भेज दिया ताकि वहां जाकर वह गुरु के उस कार्य को जो अधूरा पड़ा हुआ था पूरा करे।

यह गुरु का इतना सच्चा और आज्ञाकारी भक्त था कि शिष्य होते ही जब इसे गुरुदेव ने पञ्जाब जाकर मुसलमानी अत्याचारों से हिन्दुओं की रक्षा करने की आज्ञा दी, तो यह तुरन्त पञ्जाब की ओर चल दिया। यद्यपि यह नई जगह जाता था परन्तु एक शब्द भी इसने मुंह से नहीं निकाला। पञ्जाब पहुंच कर इसने गुरू महाराज के नाम से एक घोषणा निकाली कि गुरु के सिक्खों को दलबद्ध होकर सेवा करनी चाहिये, सच्चे सिक्खों को उचित है कि तुरन्त सिक्ख झंडे तले आ आकर एकत्र हों। घोषणा निकलते ही सिक्ख लोग गुरु गोविन्दसिंह के झंडे तले वन्देसिंह के आधिपत्य में दलके दल सम्वेत होने लगे, यहां तक कि मालवा के कई सिक्ख सरदार

भी सम्मिलित हुए। कई सरदारों ने—यथा मालीसिंह आदि—सरहिन्द की सेना को हठात् अपनी इच्छा से बिना कहे सुने छोड़ कर बन्देसिंह के पास आ मिले। थोड़े ही काल में बदले के प्यासे सिंहों का एक महा कटक तय्यार होकर बन्दे की आज्ञा की बाट देखने लगा।

बन्दे ने सब से पहले सरहिन्द नगर ढाकर मिट्टी में मिला दिया और उसके गढ़कोटों को भी ढा डाला। समाना को उजाड़ कर लूट लिया। मुगलों का कई लाख रुपयों का कोष लूट कर सेना को बांट दिया, कई मुसलमानी गांवों को घेर कर छीन लिया, जिन मुसलमानों ने गायें बध की या हिन्दू लड़कियों का सतीत्व नष्ट किया वा उनको तलवार के धार उतारा और उनका सारा घर बार भी लूट कर सेना में बंट गया। जिन दो पठानों ने गुरू के वेतन भोजी होते विलास-पूर के राजा का पक्ष लिया था उनके गांव व घर भी इन सिक्खों ने लूटे, यहां तक कि सारे पञ्जाब के मुसलमानों की नाक में बन्देसिंह ने कौड़ी पहना छोड़ी।

इन सब बातों से क्रुद्ध होकर सरहिन्द के भोगपति वज़ीरखां ने सिक्खों से उनकी उद्दण्डता का बदला लेना चाहा, खूब घमासान युद्ध हुआ लेकिन वज़ीर का प्रताप भानु अस्त हो चुका था। कोई न उसकी बात मानता न प्रतिष्ठा करता, थोड़ेही समय में सिक्ख दल विजयी हुआ, वज़ीर सपरिवार व प्रधान प्रधान सैन्यनायकों साथ सिक्खों के हाथ मेंबन्दी हुआ। पाठक जानते हैं कि इस दुष्ट वज़ीर ने किस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह के पाँच व छः वर्ष के दुधमुंहे बालकों को बध कराया था, सिक्खों के कलेजे में वह दुःख अब तक शाल

रहा था। अब अवसर पाकर बन्देसिंह ने भी वजीर के नेत्रों के सामने उसके पुत्रों और अन्य कुटुम्बियों को अपनी आज्ञा से वध कराया अन्त में वजीर को दुर्दशा से यम धाम भेजा। उस देश द्रोही और कुलाङ्गार सुचानन्द को भी यथेष्ट बदले के साथ प्राण दण्ड दिया गया, क्योंकि इसने ही गुरु महाराज के दो पुत्रों (श्री जोरावरसिंह और श्री फ़तेहसिंह) को साँप का बच्चा कहकर वज़ीर को इन्हें वध करने की सलाह दी थी। इस प्रकार बन्दे ने यथा साध्य समस्त अत्याचारों का समुचित बदला नहीं तो बहुत कुछ बदला लिया और मुसलमानों को सिक्खों का लोहा मना छोड़ा।

बन्दे ने गुरु महाराज की आज्ञाओं का बहुत उल्लङ्घन भी किया, अपनाही एक सम्प्रदाय सा स्थापित करलिया जिसका. प्रधान धर्म्म राजनैतिक कैतव स्थापित किया गया। अत्याचार का अच्छा फल किसी को भी नहीं मिलता, हिन्दू हो या मुसलमान अत्याचारी को अपने अत्याचार का कटु फल एक दिन भोगना ही पडता है। अन्त में गुरु की आज्ञा का तोड़नेवाला, अपनी विजयों से फूला हुआ और अत्याचार का रूपधारण किये बन्दासिंह की पराजय हुई। मुसलमानों ने इसे पकड़कर दिल्ली भेजा जहां कि यह बहुत बुरी तरह से मारा गया। कई हजार सिक्खों के भी प्राण गये, कुछ लडाई में मरे, और दो हजार से अधिक पराजित सिक्खों के सिर रणभूमि में ही काटे गये और जो डेढ़ हजार दिल्ली में बन्दी हो कर आये थे उनको क्रमशः एक पखवाढे में मुसलमानों ने वध किया। अन्त में बन्दा जिस दुर्दशा से मारा गया उसका न कथन करना ही अच्छा है।

कई इतिहासकार कहते हैं कि वन्दे को गरम लोह की शलाका से छेद छेद निर्जीव करके फेंक दिया गया था, जमुना तट के किसी साधु ने उसे उठाकर अपनी कुटी में रखा और कुछ दिनों में वह चङ्गा होगया। चंगा होने पर वन्देसिंह चुनाव किनारे के एक वव्वर नाम के ग्राम में चुप चाप जारहे यहां इन्होंने दूसरा विवाह किया और वन्देसिंह की सन्तति आज तक वहां मौजूद है। इन लोगों का एक वडाभागी न्यारा ही समुदाय भी है, क्योंकि वन्देसिंह अन्त में बन्दे गुरु के नाम से प्रसिद्ध होगये थे, जैसा कि हम ऊपर एक जगह संकेत कर चुके हैं।

वन्दे के कार्य्यों से मुग़लों में विशेष करके वहादुरशाह के मन में वड़ा असन्तोष हुआ और गुरुगोविन्दसिंह की ओर से वादशाह को सन्देह होगया। किन्तु गुरुगोविन्द सिंह के भुज-वलों के ही प्रताप से वहादुरशाह को देहली का राज मिला था इसलिए और कुछ गुरु महाराज के प्रताप से भयभीत होने के कारण भी वह प्रकट रूप से न गुरु महाराज की शत्रुता कर सका न कृतघ्नता का परिचय देना चाहता था। इसने गुरु महाराज के वध करने के लिये गुप्तचर नियत करदिये थे और ऊपर पूर्ववत् ही प्रेमभाव दर्शाता व दिखाता रहा।

एक दिन जब गुरु महराज जाति पांति, रङ्ग रूप, देश वेश का भेद छेदन करते हुए एक परमात्मा का अटल प्रेम मनुष्यमात्र के लिये श्रेयस्कर सिद्ध कररहे थे, आपने उन लोगों की घोर निन्दा की जो धर्म्म के नाम पर विजातियों विधर्म्मियों का रक्तपात करना धार्मिक व उचित धर्म्म शास्त्र विहित काम वतलाते हैं अथवा अन्य किसी प्रकार का भेद

परमात्मा की प्रजा में करते हैं, अर्थात् रंग रूप, देश, वेश, जाति व धर्म के पक्षपात करनेवाले लोगों तथा ईश्वर से बहिर्मुख और दुराचारियों का आपने खण्डन किया। यह अवसर पा मुग़ल राजाके नियत किये हुये एक गुप्तचरने पीछे से पेट में कटार चुभोदी संसार ने यह समझा कि इसमें राजा का कोई अपराध नहीं है। धर्मान्ध पठान नवयुवक ने ही ऐसा किया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार की दन्त कथाएं हैं पर उनका सब का सार अन्त में यही है कि जब अन्यायी को अपने अन्याय के समर्थन करने का मार्ग नहीं सूझता तब वह दूसरे अन्याय करने को तय्यार हो जाता व वश चलने पर कर गुज़रता है। इस प्रकार अन्यायों व अत्याचारों से जितनी हानि अत्याचारी की होती है उतनी उनकी नहीं होती जो सताये जाते हैं क्योंकि अत्याचार से अत्याचारी का बल क्षीण होता है और अत्याचार सहन करते करते उन मनुष्यों के हृदय में बल व बदले का साहस उत्पन्न होता है जिन पर कि अत्याचार किया जाता है। हमारे इस कथन का पूरा प्रमाण सिक्ख इतिहास में भरा पड़ा है, यही नहीं किन्तु संसार के हर इतिहास में पदे पदे देखने को मिल सकता है।

गुरुगोविन्दसिंह इस हत्यारे पठान के आघात से मरे नहीं, तुरन्त मलहम पट्टी की गयी जिससे आप शनैः शनैः पांच छः मास में खूब चलने फिरने और उपदेश आदि भी करने लगे किन्तु भीतर टाँके कच्चे थे। एक दिन आप ने सादि क्रीड़ा क्षेत्र में जाकर एक बड़े भारी धनुष पर खींच कर बाण चढाया जिससे घाव फिर फट गया और रक्त

की धार वह निकली और आपको मूर्छा भी होने लगी। इस अर्धमूर्छितावस्था में आपने सिक्खों को बुलाकर भक्ति मय उपदेश दिया और स्वर्गवासी हो गये। आप के स्वर्गारोहण का दिन कार्तिक शुक्ला पञ्चमी विक्रमाब्द १७६५ का दिन भारत के इतिहास में चिरंस्मरणीय रहेगा। आपने ४२ वर्ष तक इस भारतमाता की गोद को सच्चे वीर पुत्र से विभूषित रक्खा।

इसमें सन्देह नहीं कि जिस घोर अत्याचार के समय वीर शिरोमणि शिवाजी और वीर प्रवर गुरु गोविन्दसिंह, वीर रत्न प्रताप हुए, उस समय उनकी आवश्यकता थी, मानों परमात्मा ने इन महा मान्य ईश्वर भक्त आदर्श आर्य्यों को भेज कर ही हिन्दू जाति को निर्बीज होने से बचाया। यदि छत्रपति आर्य कुलभूषण शिवाजी की बावत यह सत्य है कि 'शिवाजी न हो तो तो सुन्नत होत सब की' तो निस्सन्देह यह बात गुरु गोविन्द सिंह की बाबत दश गुणी अधिक सत्य है क्योंकि पञ्जाब मुसलमान बल का, मुग़लदल का, मुसलमानी शिक्षा के कटुफल का प्रधान केन्द्र था। जब तक भारतमाता की गोद में उसकी एक भी सन्तान रहेगी, जब तक आर्य्य वंश का भूमण्डल में इतिहास रहेगा तब तक इन पुरुष रत्नों का, इन आर्य्य वीरों का इन राष्ट्र निर्माताओं का नाम भी रहेगा। यदि भारत सन्तान अपने पूर्वजों का सद्गुण त्याग एकदम कृतघ्न न हो तो उसे इन वीर प्रवरों का कृतज्ञ होना पड़ेगा और यह कृतज्ञता केवल इस प्रकार ही प्रकट की जाती रह सकती है कि भारत की सन्तान धर्म, सम्प्रदाय, आदि के भेद छोड़ कर आर्य्यावर्त के वीर के नाते इनकी जयन्ती इनके स्वर्गारोहण के पवित्र दिन प्रतिवर्ष स्थानान्तर में मनायें।

(समाप्त)

ओङ्कार बुकडिपो की उत्तम पुस्तकें

(१) शान्ता—एक आदर्श स्त्री का जीवन चरित्र जो अत्यन्त रोचक तथा सरल भाषा में लिखा गया है यह कन्याओं तथा नव वधुओं को अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य केवल ॥)

(२) लक्ष्मी—यह स्त्रियों के लिये अत्यन्त उत्तम तथा शिक्षाप्रद पुस्तक है मूल्य केवल ।)

(३) सरोज सुन्दरी—यह अनुपम शिक्षापूर्ण पुस्तक पढ़ने योग्य है पृष्ठ संख्या लगभग २०० मू० केवल ॥)

(४) सौन्दर्यकुमारी—यह बहुत अच्छी और करुणा रस पूर्ण पुस्तक है मूल्य केवल ।-)

(५) आदर्श परिवार—इस पुस्तक में एक आदर्श बहू का शिक्षाप्रद चरित्र है मूल्य केवल ॥=)

(६) कन्या सदाचार—इस पुस्तक में कन्याओं को सदाचार विषय पर नाना प्रकार से सुशिक्षाएं दी गई हैं मूल्य ।)

(७) कन्या-पाकशास्त्र-पाक विद्या में निपुण होने के लिये यह पुस्तक अति उत्तम है मूल्य ।)

(८) कन्या-दिनचर्या—इस पुस्तक में कन्याओं को दिनचर्या विषय पर अत्युत्तम शिक्षाएं दी गई हैं मू० ।)

(९) हंसानेवाली कहानियां—यह सचित्र बालकोपयोगी पुस्तक है इसमें हास्य रस की उपदेशमयी कहानियां हैं मूल्य ।)

(१०) ईश्वर चन्द्रविद्यासागर—इस सचित्र पुस्तक में बङ्गाल के महात्मा ईश्वरचन्द्र का जीवन चरित्र है मू० ॥)

(११) महाराणी सीता-सीता जी का सम्पूर्ण जीवन चरित मू० ।) (१२) कन्यापत्र दर्पण मू० -) (१३) आदर्श कन्या पाठशाला मू० -) (१४) दो कन्याओं की बातचीत मू०)॥ (१५) शिशुपालन मू०)॥ (१६) सजिल्द सन्ध्या -)

ओंकार बुकडिपो (स्त्री-शिक्षा भंडार) :

प्रसिद्ध पुस्तकें

स्वाधीनता .
आंख की किरकिरी ...
प्रतिभा .. ... .
जान स्टुअर्ट मिल की जीवनी ... ...
फूलो का गुच्छा . . ..
चौबे का चिट्ठा . ..
मितव्ययिता ..
स्वदेश .. .
विद्यार्थी का जीवन उद्देश्य ..
सदाचारी बालक ...
दिया तले अंधेरा
कठिनाई में विद्याभ्यास
आत्मोद्धार .
चरित्र गठन और मनोबल .
शान्ति कुटीर ..
बूढ़े का ब्याह (सचित्र) . .
सचित्र हिन्दी महाभारत ... ...
सीता चरित्र .. ..
सीता वनवास ... ...
भारतीय विदुषी . . ..
शकुन्तला ... ...
षोडशी ... ...
स्वर्णलता ... .

ओङ्कार बुकडिपो की उत्तम पुस्तकें

(१) शान्ता—एक आदर्श स्त्री का जीवन चरित्र जो अत्यन्त रोचक तथा सरल भाषा में लिखा गया है यह कन्याओं तथा नव वधुओं को अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य केवल ॥)

(२) लक्ष्मी—यह स्त्रियों के लिये अत्यन्त उत्तम तथा शिक्षाप्रद पुस्तक है मूल्य केवल ।)

(३) सरोज सुन्दरी—यह अनुपम शिक्षापूर्ण पुस्तक पढ़ने योग्य है पृष्ठ संख्या लगभग २०० मू० केवल ।।)

(४) सौन्दर्यकुमारी—यह बहुत अच्छी और करुणा रस पूर्ण पुस्तक है मूल्य केवल ।=)

(५) आदर्श परिवार—इस पुस्तक मे एक आदर्श वहू का शिक्षाप्रद चरित्र है मूल्य केवल ।।=)

(६) कन्या सदाचार—इस पुस्तक में कन्याओं को सदाचार विषय पर नाना प्रकार से सुशिक्षाएं दी गई हैं मूल्य ।)

(७) कन्या-पाकशास्त्र-पाक विद्या में निपुण होने के लिये यह पुस्तक अति उत्तम है मूल्य ।)

(८) कन्या-दिनचर्य्या—इस पुस्तक में कन्याओं को दिनचर्या विषय पर अत्युत्तम शिक्षाएं दी गई हैं मू० ।)

(९) हंसानेवाली कहानियां—यह सचित्र बालकोपयोगी पुस्तक है इसमें हास्य रस की उपदेशमयी कहानियां हैं मूल्य ।)

(१०) ईश्वर चन्द्रविद्यासागर—इस सचित्र पुस्तक में बङ्गाल के महात्मा ईश्वरचन्द्र का जीवन चरित्र है मू० ।।)

(११) महाराणी सीता-सीता जी का सम्पूर्ण जीवन चरित मू० ।) (१२) कन्यापत्र दर्पण मू० –) (१३) आदर्श कन्या पाठशाला मू० –) (१४) दो कन्याओं की बातचीत मू०)॥ (१५) शिशुपालन मू०)॥ (१६) सजिल्द सन्ध्या –)

प० ओङ्कारनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस प्रयाग में छपा।

ओङ्कार आदर्श-चरितमाला

सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि ओंकार प्रेस प्रयाग संसार के आदर्श पुरुषों के जीवन चरित निकालने आरम्भ कर दिये है। प्रत्येक जीवन चरित का मूल्य केवल ।) आना है। प्रत्येक जीवन चरित में लगभग १०० पृष्ठ होते हैं और चरित नायक का एक सुन्दर चित्र भी दिया जाता है। प्रत्येक मास में लगभग दो जीवन चरित निकाले जाते हैं। इस प्रकार ५०० जीवन चरित निकाले जांयगे। यदि आप अपना तथा अपने बालक तथा बालिकाओं को उन्नति चाहते हैं तो आप पढ़िये और अपने बच्चों को पढ़ाइये। जो लोग अपना नाम ग्राहकश्रेणी में पहले लिखा लेंगे और रुपया भेज देंगे उन के पास १२ जीवन चरित घर बैठे पहुंच जायगे। प्रत्येक जीवन चरित छपते ही सेवा में भेजा जाया करेगा। डांक महसूल न देना पड़ेगा।

जो लोग रुपया पेशगी न भेजकर ग्राहक श्रेणी में नाम लिखाना चाहते हैं उनको वी० पी० और डांक महसूल सहित प्रत्येक जीवनी ।=) में भेजी जावेगी।

छपे हुये जीवन चरित	निम्न लिखित छप रहे हैं
१—स्वामी विवेकानन्द	१—नेपोलियन बोनापार्ट
२—स्वामी दयानन्द	२—छत्रपति शिवाजी
३—महात्मा गोखले	३—आर्य पथिक प० लेखरामजी
४—समर्थ गुरु रामदास	४—स्वामी शंकराचार्य
५—स्वामी रामतीर्थ	५—महात्मा गौतम बुद्ध
६—राणा प्रतापसिंह	६—महादेव गोविन्द रानाडे
७—गुरु गोविन्द सिंह	७—गुरु नानक
८—आत्मवीर सुकरात	८—भीष्म पितामह

मैनेजर—ओंकार प्रेस, प्रयाग।